


Printed by.—

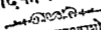
Banshidhar at his "Sridhar" Printing
press, Shukrawar peth 477 Solapur.

Published by —

Nathuram Premi, Secretary of Manikchar
granthamala Hirabog Girgaon Bombay.



संपादकीयवक्तव्यम्.



प्रथमतो दोहारूपेण द्रव्यस्वभावप्रकाशो नाम ग्रन्थ आसीद्
 दृष्टिपथम् । तदनु ग्रन्थ एको न्युनपञ्चकनामा गाथात्मकेण श्रीमाहिल-
 देवेन रचित । स नष्ट इति धीदेवमेतन्मुनिना ग्रन्थोप पुनारचित
 इति प्रशस्त्यान्तिसया प्रकटीभवति ।

तदथा,

“ द्रव्यसहायपथाम दोहयवधेण आसि ज दिष्ट ।
 गाहावधेण पुनो ररुपं माहलदेवेण ॥

दुग्गीरणेण पोथवेरिय तत जहा निरुणद्धे ।
 सिरिदेवमेणमुनिना तद णयचकं पुनो ररुपं ॥ ”

अत्र समतभद्रादीनां प्राचामाचार्याणां बहूनि कथनान्युद्ध-
 त्पुपलभ्यन्ते तानि भवे गूणीप्रकारो समकलेकनीयानि ।

अनेत्र प्रकाशितोपिकाराणां क्रम पत्रसंख्याक्रमेण । एवं एषा
 णामुद्धतवचनानां च गूणी आकरावाशिकेण दर्शिता । प्रत्यत्र
 न्युनपञ्चकनामा ग्रंथो विरचितपत्रसंकेतं बोधितस्ततो बृहज्जपचक-
 नासो । एषुनपचके नयोपनयानां स्वरूपमुदाहरणानि च सन्ति
 बृहतिस्वर द्रव्यगुणार्थोपाणां सामान्यतो विवेचनं स्वरूपं वणि-
 रानन्तरस्वर धाम्नि । एषाणां प्राक् संग्रहभंगवादी वा विवेचनसू-
 चकं चर्चते सा प्राचीना, प्राङ्गमभूतानां वा च संख्या तासं
 कृतेति सुविद्योऽपिवा—

११२९-
 वृद्धिपथम्.

अधिकारमूची.

अधिकारनाम.	पृष्ठ.
१ लघुनयचक्रं	१
१ वृहन्नयचक्रं	२१
२ पीठिका	२१
३ गुणाधिकारः	२३
४ पर्यायाधिकारः	२६
५ द्रव्याधिकारः	३०
६ पंचास्तिकायाधिकारः	४८
७ तत्त्वार्थाधिकारः	६१
८ प्रमाणाधिकारः	६६
९ नयाधिकारः	६७
१० निधेयाधिकारः	९१
११ दर्शनाधिकारः	९४
१२ शानाधिकारः	१०४
१३ सरागचारित्राधिकारः	१०५
१४ वीतरागचारित्राधिकारः	१०९
निश्रयचारित्राधिकारः	११३
उपोद्घातः	१२९

नयचक्र और श्री देवसेनसूरि ।

नयचक्र ।



आचार्य विद्यानन्दने अपने श्लोकवार्तिक (तत्त्वार्थमूत्र टीका) के नयविवरण नामक प्रकरणके अन्तमें लिखा है.—

संक्षेपेण नयास्तावद्याख्याताः सूत्रसूचिताः ।

तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संक्षिप्त्या नयचक्रतः ॥

अर्थात् तत्त्वार्थमूत्रमें जिन नयोंका उल्लेख है, उनका हमने संक्षेपमें व्याख्यान कर दिया । यदि उनका विस्तारसे और विशेष पूर्वक स्वरूप जाननेकी इच्छा हो तो ' नयचक्र ' से जानना ।

इस उल्लेखमें माझम होना है कि विद्यानन्द स्वामीसे पहले ' नयचक्र ' नामका कोई ग्रन्थ था जिसमें नयोंका स्वरूप मूल विन्तारके साथ दिया गया है । परन्तु वह नयचक्र यही देवसेन-सूरिका नयचक्र था, ऐसा नहीं जान पड़ता । क्योंकि यह विक-कुल ही छोटा है । इसमें कुल ८७ गायों हैं और माइल धव-उके बृहत् नयचक्रमें भी नय सम्बन्धी गाथाओंकी संख्या इससे अधिक नहीं है । इन दोनों ही ग्रन्थोंमें नयोंका स्वरूप बहुत संक्षे-पमें लिख, गया है । इनमें अधिक ही भ्यामी विद्यानन्दने ही नय-विवरणमें लिख दिया है । नयविवरणकी श्लोकसंख्या ११८ है । और उनमें नयोंका स्वरूप बहुत ही उत्तम रीतिसे=नयचक्रकी भी जयेशा श्रद्धासे—लिखा है । ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि श्लोक-

वार्तिकके कर्ता अपने पाठकोसे देवसेनसूरिके नयचक्रपरसे विला-
 र्पूर्वक नयोका स्वरूप जाननेकी सिफारिश करते । इसके सिवाय
 जैसा आगे चल्कर बतलाया जायगा, देवसेनसूरि कुछ भी विद्या-
 नन्द स्वामीके पीछे हैं । अतः छोक वार्तिकमें जिस नयचक्रका
 उल्लेख है, वह कोई दूसरा ही नयचक्र होगा ।

श्वेताम्बरसंप्रदायमें ' मल्लवादि ' नामके एक बड़े भारी तर्-
 किक हो गये हैं । आचार्य हरिभद्रने अपने ' अनेकांत (१)
 जयपताका ' नामक ग्रंथमें वादिमुख्य मल्ल वादिकृत ' सम्मति (१)
 टीका ' के कई अवतरण दिये हैं और श्रद्धेय मुनि जिनविज-
 यजीने अनेकानेक प्रमाणोंसे हरिभद्रसूरिका समय (३) वि.
 स० ७५७ से ९२७ तक सिद्धकिया है । अतः आचार्य मल्ल-
 वादि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके पहलेके विद्वान् है, यह नि-
 श्चय है । और विद्यानन्दस्वामी विक्रमकी ९ वीं शताब्दिमें (४)
 हुए हैं, यह भी प्रायः निश्चित हो चुका है ।

उक्त मल्ल वादिका भी एक ' नयचक्र ' नामका ग्रंथ
 है जिसका पूरा नाम ' द्वादशार—नयचक्र ' है । जिसतरह
 चक्रमें आरे होते हैं, उसी तरह इसमें बारह आरे अर्थात्

१ अहमदाबादमें शेठ मनमुखभाई भग्नूभाईके द्वारा छप चुका
 है । २ यह आचार्य सिद्धसेनसूरिके ' सम्मतितर्क ' नामक
 ग्रंथकी टीका है । ३ देखो, जैन साहित्यसंशोधक अंक । ४ देखो
 जैनहितैषी वर्ष ९ अंक ९ ।

व्याय है । यह ग्रंथ बहुत बड़ा है । इसपर आचार्य
 गोमदजी भी बनाई हुई एक टीका है जिसकी भौतिकद्वारा
 ८००० है । यह अनेक श्रेताम्बर पुस्तकालयोंमें उपलब्ध
 । संभव है कि विद्यानन्दस्वामीने इन्ही ग्रन्थका जो कुछ बरके
 लिक्त ग्रन्थना की हो । जिसतरह हरिवंशपुराण और आदि
 ताणके कर्ता दिगंबर जैनाचार्योंने सिद्धसेनसूत्रिणी प्रकाशा की
 जो कि श्रेताम्बराचार्य समझे जाते हैं उसी तरह विद्या-
 नन्दस्वामीने भी श्रेताम्बराचार्य महापादिके ग्रन्थको पढ़ने की नि-
 र्दिश की हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । जिस तरह
 महामेनसूत्रिणी तार्किक थे उसी तरह महापादि भी थे और दि-
 पर और श्रेताम्बर सम्प्रदायके तार्किक सिद्धांतोंमें कोई मह-
 त्वाका मतभेद भी नहीं है । तब नवरासपी एक श्रेताम्बर
 के ग्रन्थका उल्लेख एक दिगम्बराचार्य द्वारा किया जाना हमें
 भी आश्चर्य नहीं मान्य होगा । अनेक श्रेताम्बर ग्रन्थकारोंकीने
 ही इसी तरह दिगंबर ग्रन्थकारोंकी प्रकाशा की है और उनके
 ग्रन्थोंके एकात्रे स्थि है ।

यह भी संभव है कि देवसेनके अनिर्दिक्त ग्रन्थ किसी दि-
 गम्बराचार्यका भी कोई ग्रन्थका हो और विद्यानन्दस्वामीने उक्त
 ग्रन्थ किया हो । महाशय्यके पुराण महामहके अर्थ एक
 ग्रन्थ जो वेदके अर्थशाली ग्रन्थि है, मोरेन्द्रकी ग्रन्थि मरी है
 यदि टीका हो तो उसने इस बातकी पुष्टि होती है । यह ग्रन्थ

इस प्रकार है—

दुममोरणेण पोयं पेरियसंतं जद्धा ति (नि) रं नडं ।
 गिरिदेवमेन मुणिणा तद्द णयचरुं पुणो रइयं ॥
 इसका अभिप्राय यह है कि दु.पमकात्तरूपी आधीति (जहाज) के समान जो नयचरु बिरकाळो नष्ट हो गये उसे देवमेन मुनिने किरमे रचा । इसमे मद्धम होता है देवमेनके नयचरुके पहले कोई नयचरु था जो नष्ट हो गया था और बहुत संभव है कि देवमेनने यह उसीका संक्षिप्त प्रतिपाद किया हो ।

उपर्युक्त पद्योंमें नयचरु नामके तीन मध्य प्रसिद्ध देव-सामिकरुच-इ म-यमात्रके इस अंकमें ये तीनों ही नयचरु संक्षिप्त किये गये हैं । १ आद्यापद्मि, २ उपनयचरु, और ३ नयचरु । इनमेंसे पर्युक्त मध्य आद्यापद्मि संस्कृतमें अंत में ही प्रारम्भ है ।

१ आद्यापद्मि के कर्ता भी देवमेन ही हैं । डॉ० मदन मोहन मालवीय के पुस्तकालयमें इस कर्ता की एक प्रति है, जो कालके प्रमाण के अन्तर्गत है— " इति मुनिना आद्यापद्मिना देवमेनान्तर्गतं इति मन्त्रात् । इति आद्यापद्मिना सम्पूर्णम् ॥ " २ उपनयचरु के कर्ता भी देवमेन ही हैं । डॉ० मदन मोहन मालवीय के पुस्तकालयमें इस कर्ता की एक प्रति है, जो कालके प्रमाण के अन्तर्गत है, इमे नयचरु सम्पूर्णम् इति मन्त्रात् ।

• पृ. १११६-१११७ के अन्तर्गत मन्त्रात् इति

किया है। पं० शिवजी छालजीकृत दर्शनमार-वचनिकामें देव-
मेनके सस्कृत नयचक्रका जो उल्लेख है, वह भी जान पड़ता है,
इसी आलापपद्धतिको लक्ष्य करके किया गया है। वद्यपि आलाप-
पद्धतिमें नयचक्रका ही गद्यरूप साराश है और वह नयचक्रके
ऊपर ही बनी गई है, इसलिये कुछ लोगों द्वारा दिया गया उमका
वह 'नयचक्र' नाम एक सीमानक धाम्य भी हो सकता है,
परन्तु वास्तवमें इसका नाम 'आलापपद्धति' ही है—नयचक्र
नहीं।

आलापपद्धतिके प्रारम्भमें ही लिखा है— "आलापपद्धतिर्वच-
नरचनानुक्रमेण नयचक्रम्योपरि उच्यते।" इससे माझम होता है
कि आलापपद्धति नयचक्रपर ही प्रश्नोत्तररूप संस्कृतमें लिखी
गई है। आलाप अर्थात् श्रोतृचालकी पद्धतिपर अथवा वचनरच-
नाके दृग्पर यह 'सुखबोधार्थ' वा सरलतासे समझने आनेके
लिए बनाई गई है। इसकी प्रत्येक प्रतिमें इमे 'देवमेनकता'
शिक्षा भी मिलता है, इससे यह निश्चय हो जाता है कि यह नय-
चक्रके कर्ता देवमेनकी ही रचना हुई है—अन्य किसीकी नहीं।

२ लघुनयचक्र । धीरेपतेनसूरिका वास्तविक नयचक्र
यही है। इनके साथ जो 'लघु' विशेषण लगाया गया है वह
इसके आगेके संघको बड़ा देनकर रखा दिया गया है; परन्तु
वास्तवमें उसका नाम द्रव्यस्वभाव प्रकाश है और उसके कर्ता
माइल्लधवट है जैसा कि आगे सिद्ध किया गया है। इसलिये
इसका नयचक्रके ही नामसे उल्लेख किया जाना चाहिए।

श्वेतांबर/चार्य यशोविजयजी उपाध्यायने अपने ' द्रव्यगुण-
र्यय रासा ' [गुजराती] में देवसेनके नयचक्रका कई जग
उल्लेख किया है और उक्त रासेके आधारमे ही लिखे हुए द्रव्य-
नुयोगतर्कणा नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी उक्त उल्लेखोंका अनुवाद
किया है । एक उल्लेख इस प्रकार है:—

नयाक्षोपनयाश्चैते तथा मूलनयावपि ।
इत्यमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥८॥

एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरुपनयास्तथैव द्वौ मूलन-
यावपि निश्चयेनेत्यममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेव-
सेनकृते शास्त्रे नयचक्रेऽपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता उक्त-
दशकेन समादिष्ट कथितं । एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्र-
ग्रन्थपाठपठितनयोपनयमूलनयादिक सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदाग-
मोक्तयुक्तियोजनासमानतत्रत्वमेवास्ते न किमपि विसंवादितायास्ती-
ति * । ”

उक्त ' तर्कणा ' में जो नयोंका स्वरूप दिया है, वह वि-
लुप्त ' नयचक्र ' का अनुवाद है और इस स्थानं ग्रन्थकर्ता
भोजसागरने स्वीकार किया है । इससे निश्चय हो जाता है कि
उपाध्याय यशोविजयजी और तर्कणाके कर्ता भोजसागर इसी
नयचक्रको देवसेनका रचा हुआ समझते थे ।

* देवता गमयद्रव्याप्रमाणाद्वार प्रकाशित ' द्रव्यानुयोगतर्कणा '

अध्याय ८ श्लोक ८ पृष्ठ ११५ ।

दर्शनसारकी रचनिकाके कर्ता पं. शिशुजीलालजीने देवसेन-
मूरिके बनाये जिन सब ग्रन्थोंके नाम दिये है उनमें प्राञ्जल
नयचक्र भी है । क्योंकि उनके मतसे भी यह देवसेनकी ही
कृति है ।

यह ग्रन्थ कृहत् नयचक्र (द्रव्यस्वभाव प्रकाश) में से छा-
टकर जुदा निकाला हुआ नहीं है । यह बात इस ग्रन्थको आ-
दिमें अन्ततक अन्धी तरह बौध लेनेसे ही प्पानमें आ जाती है ।
यह मयूर्ग ग्रन्थ है । और स्वतंत्र है । यह इसकी रचना पदसिने ही
मान्य हो जाता है । नवोंको छोड़कर इसमें अन्य विषयोंका
विचार भी नहीं किया गया है । इसके अंतर्ग नं. ८६ और
८७ की गाथाओंमें (पृष्ठ १९-२०) यह भी स्पष्ट हो जाता
है कि इसका नाम नयचक्र ही है — उसके साथ कोई ' लघु '
आदि विशेषण नहीं है ।

३ कृहत् नयचक्र इसका वास्तविक नाम 'द्रव्यसत्ताप्रपयास'
(द्रव्यस्वभाव-प्रकाश) या ' द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र '
है । ग्रन्थकर्ताने स्वयं इस नामको ग्रन्थके प्रारंभमें और अंतमें
फई जगह ब्दक किया है । नयचक्र तो इसका नाम ही
नहीं सकता है, क्योंकि नवोंके अतिरिक्त द्रव्य, गुण, पर्याय, दर्शन-
न, ज्ञान, चरित्र आदि अन्य अनेक विषयोंका इसमें वर्णन किया
गया है । यह एक संग्रह ग्रन्थ है । जिसतरह इसमें भागवतपुरा-
णंदाचार्य कृत पञ्चास्तिकाय प्रबचनसार आदि की गाथाओंके
और उनके अभिप्रायोंको संग्रह किया गया है, उसीतरह

श्वेतांवराचार्य यशोविजयजी उपाध्यायने अपने ' द्रव्यगुणनिरूपणस्य रसता ' [गुजराती] में देवसेनके नयचक्रका कई जगह उल्लेख किया है और उक्त रासेके आधारसे ही लिखे हुए द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी उक्त उल्लेखोंका अनुवाद किया है । एक उल्लेख इस प्रकार है:—

नयाधोपनयाश्चैते तथा मूलनयावपि ।

इत्थमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥८॥

एते नया उक्तलक्षणार्थे पुनरुपनयास्तथैव ही मूलनयावपि निधयेनेत्यममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्रे नयचक्रेऽपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता उत्पादकेन समादिष्टं कथितं । एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्रग्रन्थपाठपठितनयोपनयमूलनयादिक सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतत्त्वमंत्रास्त्रे न किमपि विसंवादितथास्तीति * । ”

उक्त ' तर्कणा ' में जो नयोंका स्वरूप दिया है, वह विलुब्ध ' नयचक्र ' का अनुवाद है और इसे स्वयं ग्रन्थकर्ता मोजसागरने स्वीकार किया है । इससे निश्चय हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी और तर्कणाके कर्ता मोजसागर इसी नयचक्रको देवसेनका रचा हुआ ममज्ञाने थे ।

* देवता रामचन्द्रशास्त्रमाश्रयात् प्रकाशित ' द्रव्यानुयोगतर्कणा '

तेसिं पायपंसाए उबलद्धं समणत्थेण ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि 'दण्डसहायपयास' नामका एक मन्थ था जो दोहा छद्मोंमें बनाया हुआ था। उसीको माइल्ल धवल्लने गाथाओंमें रचा।

दूसरी गाथा बहुत कुछ अस्पष्ट है; फिर भी उसका अभिप्राय लगभग यह है कि श्रीदेवसेन दोगीके चरणोंके प्रसादसे यह मंथ बनाया गया।

यह गाथा बम्बईकी प्रतिमें नहीं है, मोरेनाकी प्रतिमें है। बम्बईकी प्रतिमें इसके बदले 'दुसमीरणेण पोप पेरेपसंतं' आदि गाथा है जो ऊपर एक जगह उद्धृत की जा चुकी है और जिसमें यह बतलाया गया है कि देवसेनमुनिने पुराने नए हुए मन्थको फिरसे बनाया।

मोरेनावाली प्रतिकी गाथा यदि ठीक है तो उससे बेवकूफ ही मालूम होता है कि माइल्ल धवल्लका देवसेनसूरिसे कुछ निकटता गुहासंबंध होगा। बम्बईवाली प्रतिकी गाथा माइल्ल धवल्लसे कोई संबंध नहीं रखती है—यह मन्थक और देवसेनसूरिकी प्रशंसावाचक अन्य तीन चार गाथाओंके समान एक जुड़े ही प्रचलित गाथा है।

नीचे लिखी गाथामें कहा है कि दोहा छद्ममें ग्ये एर इन्व स्वभाव प्रकारको गुनकर मुहंकर 'या शुभंकर नामके कोई सम्मान जो संभवत माइल्ल धवल्लके मंत्र होने हंसकर बोले कि दोहाओंमें यह अस्पष्ट नहीं लगता; इसे गाथाबद्ध कर दो.—

भग पूरे नयचक्रको भी इसमें शामिल कर लिया गया है; यहाँतक कि मगलाचरण की और अंतकी नयचक्रकी प्रशंसा-सूचक गाथायें भी नहीं छोड़ी हैं ! जान पड़ता है कि नयचक्रकी उक्त प्रशंसासूचक गाथाओंके कारण ही लोगोंको भ्रम हो गया है और वे इन्हे ' बृहत् नयचक्र ' कहने लगे हैं ।

इसके प्रारंभकी उक्तानिकामें लिखा है— " श्रीकुंडकुंडा-चार्यकृतशास्त्राणा सारार्थे परिगृह्य स्वपगोपकाराय द्रव्यस्व-भावप्रकाशकं नयचक्र मोक्षमार्गं कुर्वन् गाथाकर्ता (१)....इष्ट-देवताविशेष नमस्कुञ्जंज्राह—। यहाँ द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्रका विशेषण है । संप्रहर्ताका इममें यह अभिप्राय भी हो सकता है कि यह नयचक्रयुक्त द्रव्यस्वभावप्रकाशक ग्रंथ है ।

अब हमें यह देवना चाहिए कि इस ' द्रव्यस्वभावप्रकाश ' के कर्ता कौन हैं ।

द्रव्यसद्भावपयागे दोहपबंधेण आगि जं दिष्ठे ।

तं गाद्धारबंधेण च रद्वयं माइड्य घस्नेण ॥

दुर्मरार पायामि (नि) वाय पा (या) ता (णं) मिरिदेवसे-
पजार्णं ।

१ बम्बरुंशायी प्रारंभिक श्रवणे वरुण गायत्र्यादिनां ही पाठ है, जब कि अंग्रेजोपदेश प्रयुक्त है । वास्तवमें गाथा कर्ता ही होना चाहिए वही पाठ बनना ही चाहिए था ।

निये गुरु आदि शब्दोंका प्रयोग न करते और न पढ़ी कहते कि तुम उन देवसेनको और उनके नपचक्रको नमस्कार करो ।

इन सब बातोंसे सिद्ध है कि छोटे नपचक्रके कर्ता ही बनने हैं और माइलुभवल उन्हीको लक्ष्य करके उक्त प्रशंसा करते हैं । माइलुभवलने देवसेनसूरिके पूरे नपचक्रको अपने इस ग्रन्थमें अन्तर्गर्भित करलिया है । ऐसी दरामें उनका इतना गुणगान करना आवश्यक भी हो गया है ।

माइलुभवलने इसके शिष्याय और कोई ग्रंथ भी बनाये है या नहीं और ये कब कहाँ हुए हैं, इसका हम कोई पता नहीं लगा सके । आश्चर्य नहीं जो वे देवसेनके ही शिष्योंमें हों, जिसाकि मोरेनाथी प्रसिद्धि अंलिम गाथासे और देवसेनके श्रेष्ठ गुरु शब्दका प्रयोग देखनेसे जान पड़ता है ।

देवसेनसूरि ।

नपचक्रके संबन्धमें इतनी आलोचना करके अब हम संक्षेपमें इसके कर्ता देवसेनसूरिका परिचय देना चाहते हैं । इनका बनाया हुआ एक भाषसंग्रह नामका ग्रन्थ है । उसमें वे अपने विषयमें इस प्रकार कहते हैं:—

भिरिविमलसेण (१) गणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति ।

१—भीविमलसेनगणधरशिष्यः नामेन देवसेन इति ।

अनुपजनसोधनार्थं तेनेद विरचित एव ॥

मुणिउज्ज दोहरत्यं सिग्वं हसिउज्ज सुहंकरो मणर ।
एत्य न सोहइ अत्यो गाहापंथेण तं मणह ॥

इससे भी यही सादन होता है कि 'दन्वसहावदन्वस' परसे दोहाबद्ध था और उसे माइल्ल धवलने गाथाबद्ध किया । माइल्ल धवल गाथा कर्ता ही है, इसका सुझावा इस स्थिति में स्थानिकासे भी हो जाता है जहां लिखा है कि गाथाकर्ता (न्य कर्ता नहीं) इष्ट देवताको नमस्कार करते हुए कहते हैं ।

नीचे लिखी गाथाओंसे भी यह प्रकट होता है कि इष्टदेव के कर्ता देवमेनस्वरि नहीं किन्तु माइल्ल धवल है:—

दारियदुष्णयदणुयं परअप्पवस्सिन्निररत्तरधारं ।
मय्यण्णुविण्णुचिण्णं सुदंमणं णमह णयचक्कं ॥
गुयक्केवलीहिं कडियं गुअममुदअमुदमयमाणं ।
बहूमेगमेगुराविय विरात्रियं णमह णयचक्कं ॥
गियमद्गुणयदुष्णयदणुदेह विदारणेक्कवररीरं ।
तं देयमेणदेवं णयचक्कयं गुहं णमह ॥

इससे भी यही दो गाथाओंमें नमस्कारकी प्रशंसा करके कहा है कि वेमें विनेयनों मुक्त नमस्कारको नमस्कार करो और नमस्कार गाथासे कहा है कि दुर्देवकी राक्षसको विदारण करो । वेमें वेष्ट कीर मुक्त देवमेनस्वरि को नमस्कारके कर्ता है—नमस्कार करो । यदि हम स्वयं देवमेन होवे तो वे कर्ता

किन्तु ग्रन्थमें उन्होंने ग्रंथ रचनाका समय नहीं दिया है ।

यद्यपि इनके किसी ग्रन्थमें इस विषयका उल्लेख नहीं है कि वे किस संघके आचार्य थे; परन्तु दर्शनसारके पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मूलसंघके आचार्य थे । दर्शनसारमें उन्होंने काष्ठसंघ, ऋषिदक्षसंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिग्म्बरसंघोंकी उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्याता कहा है परन्तु मूलसंघके विषयमें कुछ नहीं कहा है । अर्थात् उनके विश्वासके अनुसार यही मूलसे चला आया हुआ असली संघ है ।

दर्शनसारकी ४३ वीं गाथामें [१] लिखा है कि यदि आचार्य पचनन्दि (कुन्दकुन्द) सीमन्धर स्वामीद्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सधे मार्गको कैसे जानते । इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नाय में थे ।

भावसेमह (२) (प्राकृत) में जगद् जगद् दर्शनसारकी अनेक गाथा उद्धृत की गई हैं और उनका उपयोग उन्होंने स्वनिर्मित गाथा-ओकी भांति किया है । इससे इस विषयमें कोई संदेह नहीं र-

१ अद् पडमणदिणाद्दो सीमन्धरसामिदिव्यज्ञानेण । न विबोद्ध तो समया कद् सुमम्य पयणंति ॥

२ भावसेमह ' माणिकचंद प्रथमाला ' में सीम ही छपनेवाला है । प्रथममें दिया जा चुका है ।

अंबुहजणवोहणर्थं तेणंयं विरइयं सुत्तं ॥

इससे मान्य होना है कि इनके गुरुका नाम श्रीविमंज्जेन गणवेर [गणी] था । दर्शनसार नामक ग्रन्थके अंतमें वै धर्ना परिचय देते हुए लिखते हैं:—

पुब्बायरियकयाइं [१] गाहाइं संचिऊण एवत्थ ।

सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥४९॥

रइओ [२] दंसणसारो हारो मध्वाण णवसए नवए ।

मिरिपासणाहगेहे सुविमुद्धे माहमुद्धदसमीए ॥५०॥

अर्थात् पूर्वाचार्योंकी रची हुई गाथाओंको एक जगह संवि-
त करके श्रीदेवसेन गणिने धारा नगरीमें निवास करने हुए पा-
र्शनाथके मंदिरमें माघ सुत्री दशवी विक्रम [३] संवत् ९९० को यह
दर्शनसार नामक ग्रन्थ रचा । इससे निश्चय हो जाता है कि उ-
नका अस्तित्व काल विक्रमकी दशवी शताब्दि है । अपने अन्य

१—पूर्वाचार्यकृता गाथाः सचयित्वा एकव ।

भौदेवसेनगणिना धारायां संवसता ॥४९॥

२—रचितो दर्शनसारो हारो मध्यानां नवशने नवतौ ।

मीमांसाधनाथगेहे सुविमुद्धे माघसुद्धदशम्याम् ॥५०॥

३—दर्शनसारकी अन्य गाथाओंमें जहाँ जहाँ सचयित्वा उल्लेख किया
गया वहाँ वहाँ ' विक्रमस्यैव मरणस्य ' पद देखकर विक्रम संवत् ही
संज्ञित किया है । इसके शिवाय धारा (मालवा) में विक्रम संवत् ही
संज्ञित रहा है ।

१ मोरेनाकी पूज्यपाद वं. गोपालशास्त्रीकी कराई हुई कापी पर से ।

२ स्वर्गीय दानरीर गेट मालिकचण्दजीके चौगट्टीदं. मंदिर की नयचक्र और इत्यरथभाव प्रकाशकी प्रतियों परसे । ये दोनों प्रतियाँ एक ही लेखकके हासकी लिखी हुई हैं और लगभग ४०० वर्ष पहले की हैं । प्राय. शुद्ध है ।

३ जोलापूरके सरस्वती भण्डारकी एक प्रतिपरसे जो सन्त १९३५ की लिखी हुई है और शुद्ध है ।

एक बार इसपरि प्रेसकापी वं० इन्द्रलालजी साहित्य साधी मयपुरके पास भेजी गई थी और उन्होंने उसका कुछ भाग वहींके किसी सरस्वती भण्डारकी प्रतिपरसे शुद्ध कर दिया था ।

आटापपद्धतिका मुद्रण, निर्धनमागमे थी० ए० पन्नालालजी बाफर्डालके प्रयत्नसे छापी हुई प्रतिपरसे कराया गया है ।

इस ग्रन्थका गणनादन और ससोधन श्रीयुक्त ए० वंशीधरजी साधी न्यायतीर्थने किया है । और उन्हीके अधिप प्रेसमें यह मुद्रित हुआ है ।

पूना:—
द्वितीय आवण बरी २
सं० १९७७ वि०

निवेदक—जाधूराम भेमी
भेमी.

10

11

12

दुग्धदध्वे जो पुन	२६	१८
प्रत्यभिज्ञा पुन-	३२	१८
प्रमाणनयनिक्षे	६९	४
पञ्चवर्णात्मकं चित्रं-	६८	१२
ष्यवहाराश्रयाद्यु	११	८
षवहारेणुवदिस्मदि	९५	२०
बहिरंतपरम-	१०५	२
षवहारादो बधो	१०९	३
भायः स्यादभित्ति	४१	१८
भरहे दुस्तमकाडे	१०९	२१
मणसद्विषं नवि	६७	७
य एव नित्यक्ष	९७	१०
स्यभावतो यथा	४९	५
सवियम्यणिभि	६६	१९
सर्वशेफातरूपेण	६८	१४
सिद्धमत्रो यथा	८६	२०
सप्तपनिमोदवि	१०४	१६
सा खट्ट दुविहा	१०८	१७
सो इह भणिय स	१२३	२०

मूलसूत्राणामकाराद्यनुक्रमसूची.

अ.

अक्कट्टिमा अणि-	६	१७
अवरे परमणि-	८	१८
अहवा सिद्धे सदे	९	२१
अणुगुरुदेहप.	११	१०
अण्णोर्ति अत्त	११	१९
अवरोपरं विमि.	२२	१४
अत्थित्त कथुत्त	२४	२
अट्टचदुणाणदं	"	१२
अगुरुल्लुगा अणत्त	२७	५
अहवा वासणदो य	३२	१३
अत्थित्ति णत्थि मित्र	३६	२१
अत्थिसहावे मत्ता	३७	९
अणुहवमात्रो चयण	३८	७
अत्थित्ताइसहावा	४१	२१
असुहसुहाण भेष	४५	१०
अंतोमुहत्त अवरा	"	२१
अह उट्टनिवोयंता	५९	२०
अण्णपण्ण मुत्ता	६२	२
अहवा कारणभूदा	६४	३
अट्टीवपुण्णरावे	"	७
अक्कट्टिमा अणिहणा	७४	३
अवरोपरमणितोहे	७६	९

अहवा सिद्धे सरे	७७	११
अण्णोसि अण्णगुणो	७९	१६
अवरोप्परसावेकंयं	८६	६
अधिचि णधि दो	८७	७
अधिसहाव दम्भं	"	१२
अधिचि णधि ट—	८७	११
अह गुणपञ्चयवनं	९१	१
अवरोप्परमुत्तिरुद्धा	९६	१२
अमुहमुहं विय कम्मं	९८	११
अगुहेण रापरदिभो	१०६	६
अयित्ताइसहावा	१११	९
अगुद्धसंवेयणेण	११५	३
अप्पा णाण्णमाण	१२१	१४
अरभेको वाचु प—	१२३	६
आ.		
आहरणदेमरयणं	१७	९
आदा पेदा भजिभो	५१	७
आहरणदेमरयणं—	८४	१५
आगमणोआगमरो	९१	१४
आसण्णमन्वशीरो	१०२	७
आणाएह अदिग—	१०३	१४
आदे सिद्धसहावे	"	१८
आलोपणःडिकि—	११०	८

आदा गगुपमाणो	१२१	२
	इ.	
इदमेवमुच्यते	७	१
इगरीम तु महाभा	३०	१३
इगरीम तु महासा	"	१८
इदि पुन्युता भग्ना	४२	१५
इह एव निश्चयः	५६	१९
इदि त पमाणविमय	८५	१२
इदियमोक्त्वमिभिल	१०६	१७
इदियमणस्म पसमज	१२४	०

उ.

उष्पादवयं गडणं	४	१८
उष्पादवयविमिस्ता	५	१३
उवयारा उवयारं	१६	१०
उवओमओ जीवो	५३	१७
उष्पादवयं गडण	७२	४
उष्पादवयविमिस्ता	"	१९
उवयारा उवयारं	८४	३
उहयं उहयण्ण	८७	१६
उवयारेण किजाणइ	९६	७
उवसमखयभि	"	१२
उदयादिसु. पंच	११४	८

उपर्युक्तो कश्चं	"	१८
उपादोऽप विनासो	१२८	४
ए.		
एअंतो एअणओ	२	२०
एयपदेसे दृष्यं	११	१४
एइंदियादिदेहा	१२	१२
एइंदियादिदेहा	१५	६
एयते गिरिवेकखे	१७	१९
एदेहि त्रिविह्लोगं	२२	५
एकेके अइया	२४	१७
एका अमुदसहावे	३७	१३
एवं सिपपरिणामी	४७	१४
एयपणसिममुत्तो	५७	१४
एयतो एयणयो	६९	११
एकपएगे दन्ध	७९	११
एइंदियादिदेहा	८२	१८
एकगिरिदं इयरो	८८	७
एकोवि अयखो	८९	१४
एयते गिरिवेकखे	९०	११
एवं उवसवगिरिसं	१०२	१८
एवं दसण हुत्तो	१०४	१
एवं मिच्छादी	१२०	६

०१ विष परमार्थ	१२८	९
०२ किं रसो गिन्न	"	१४
०३ ण सयलदोमा	"	१८
	ओं.	
भोदइओ उवम	४३	१
भोदइयं उवममियं	११७	८
	क.	
कम्माणं मग्गगयं	४	१४
कम्मकखयादु पत्तो	६	२२
कम्मकखयादु मुहो	३८	१५
कम्मकलंकालीणा	५१	७
कम्मं दुविहवियणं	५५	५
कारणदो इह मज्जे	५५	१४
कम्मं कारणमूदं	५६	११
कज्जं सयलसमायं	६५	१७
कम्माणं मज्जागदं	७१	२०
कम्मउपादुपण्णो	७४	९
कोहो व माण माया	१००	१०
कज्जं पडि जह पुरिसो	"	१९
काऊण करणलदी	१०१	२०
कम्मं तियालविसयं	११०	१२
कारणकज्जसहायं	११३	१६

किरिपातीदो सत्थो	११४	१४
कम्मजभावातीदं	११८	११
ख.		
खंधा बादर मुहुमा	५०	४
सुधा जे पुन्वुत्ता	५५	१८
खाइयभेदा णेया	११८	१
खित्तं पएसणाम	३८	११
ग.		
गदिठिदिवइणगहणा	३०	४
गगणं दुविहायारं	५९	६
गहिओ सो मुदणाणे	११०	२२
गिह्णइ दम्बसहावं	६	१२
गुणगुणिपञ्जसद्वे	१०	२०
गुणपञ्जाया दम्बं	२३	२
गुणपञ्जपदो दम्बं	३१	१८
गुणपञ्जायसहावा	३९	८
गुरळघुदेहपमाणो	५४	११
गुणगुणिआइषउक्के	७२	९
गुणपञ्जयाण लवसण	९३	१९
गोह्णइ वसुसहावं	६५	२२
रोह्णइ दम्बसहाव	७७	१८

एदं विय परमपदं	१२८	९
एदखि रदो णिष	"	१४
एदेण सयल्लोसा	"	१८
	ओ.	
ओदइओ उवस	४३	२
ओदइयं उवसमियं	११७	८
	क.	
कम्माणं मज्झमयं	४	१४
कम्मकखपादु पत्तो	६	२२
कम्मकखपादु सुद्धो	३८	१५
कम्मकळंकालीणा	५१	७
कम्मं दुविहवियप्यं	५५	५
कारणदो इह भव्वे	५५	१४
कम्मं कारणमूदं	५६	११
कउजं सयलसमयं	६५	१७
कम्माणं मज्झमदं	७१	२०
कम्मसुपादुपण्णो	७४	९
कोहो व माण माया	१००	१०
कउजं पडि जह पुरिमो	"	१९
काउण करणलदी	१०१	२०
कम्मं तियालविमयं	११०	१२
कारणकउजसहावं .	११३	१६

जइ इच्छह सत्तारदु	२०	२
ज ज जिणेदि दिहं	२१	११
जो राहु अणाइ—	२९	२
जका एकसहाव	३०	२०
जध ण अविणाभाओ	३१	८
जइ सन्ध वंगभव	३५	८
जइ जीवत्तमणाई	४४	२
जइ मणुए तह ति—	४६	३
ज अप्पसहावाओ	६३	११
जमु णहु तिक्—	६५	७
ज णाणीण पि—	६७	११
जइया णदेय ण विणा	..	१८
जइ सद्धानमई	६८	२
ज ज वारेइ काम	७७	२१
ज जस भणिय	९०	१
ज विय जीवमहावं	९५	६
जइ सम्भूओ भ-	९५	१५
ज जे मुणदि मु-	९७	५
ज विपि सयल्लु-	१०१	१२
जइ मुह णासर अ-	११०	४
जइ व गिरहं अमुटं	..	१७
जइ इह विद्वरेइ	११४	११

	घ.	
घाई कम्मखयादो	५१	१
घाइचठफं चत्ता	१२७	१३
	च.	
चरियं चरदि सयं	१२५	१९
चउगइ इह संसारो	८२	१३
चउगइ इह संसारो	१५	१
चारि वि कम्मं जणिया	४२	२०
चिरबद्धकम्मणिवहं	६२	२२
चेदणमचेदण। तह	२५	५
चेदणमचेदणं पिहू	३७	४
चेयणरद्विपममुत्तं	४८	१२
	ज.	
जं णाणीण वि-	१	८
जह्हा ण णयेण	१	१२
जह सद्दाणं	१	१६
जह ण विमुं-	२	१२
जं संगहेण ग—	९	३
जं जं फारेइ क—	१०	७
जह रससिद्धो भाई	१८	५
जइमग्गभावो णहु मे	१९	२
जइ इच्छह उत्तरिदुं	२०	२

जइ इच्छह उत्तारदु	२०	२
ज जे जिणेदि दिइ	२१	१२
जो ररु अणाइ—	२९	२
जसा एकसहाय	३०	२०
जथ ण अविजाभावी	३१	८
जह मन्वं वंगभवं	३५	८
जह जीवत्तमणाई	४४	२
जह मणुए तह ति—	४६	३
ज अप्पसहायादो	६३	११
जमु णहु तिव—	६५	७
ज णाणीग ति—	६७	११
जसा षडेण ण विना	"	१८
जह सदाणमाई	६८	२
ज ज करेइ कामं	७७	२१
ज जस भणिव	९०	१
ज विप जीवमहावं	९५	६
जह सम्भूओ म-	९५	१५
ज जे मुणदि मु-	९७	५
जं विवि मणलहु—	१०१	१२
जह मुट णासइ अ-	११०	४
जह व गिरहं भागुं	"	१७
जह इह विद्वरेइ	११४	११

उड्या तथ्विवरीय	११९	३
जहवि चउड्यन्नाहो	१२०	१२
ज चिय भरायवगणे	{१२५	१४
ज मार मारमञ्ज	१३०	१
ज मात्र भावपिता	"	३
जइ इच्छह उ-	"	११
जाणगभावो अणु-	११९	९
जाणगभावो जा-	"	१४
जाणादो विय भि-	३४	२
जीवेहि पुग्गलेहि य	४८	१७
जीवाहु तेवि दुविहा	५०	९
जीवे धम्माधम्भे	६०	१८
जीवाजीव आ-	६१	३
जीवो भावाभावो	५१	१७
जीवाइमननच	६३	१७
जीवादिदब्बणि-	८५	२
जीवो सत्तहाव-	१२४	२०
जीवो सहावणि-	१२५	४
जीवा पुग्गलसाला	२१	१७
जुर्नामुजुत्तमणे	९१	२
जेनियमन्न मित्ते	५८	२१
जे णवदिद्विरिहणा	३	२

जे संखाई संखा	६०.	१७
जोगा पयडिपदेसा	२०.	१६
जो हू अमुतो भ-	६२	१२
जो म्पट्ट जीवतहायो	५४	७
जो जीवदि जीविस्तदि	५३	२
जो मंगहेण गदिपं	५१	१३
जो एयममथददी	७६	१४
जो वटण ण म-	"	१०.
जो विप जीवम-	७७	७
जो निपमेदुयारं	८३	७
जो इह मुदेण भ-	८०.	९
जो गट्ट एज्ज	९६	३
जो एयरामपवट्टी	७	११
जो वटणं ष म	९	८
जो वेव जीव	..	१७
जो निवमेव म-	१५	१४
हाण हाणम्भास	१२	२१
हाणम्म भवणाविधं	१८	१७
हेओ जीवतहायो	"	२१
	९५	११
	प.	
एहपम्मंगह	३	१०
"	७०	९

ण मुण्ड वत्थुस-	१६	१
”	८३	१६
ण ममुम्भवड ण ण-	३१	१३
ण विणामिय ण	३२	२
णव पण दो अ-	४५	४
णट्टकम्बसुत्ता	५०	१९
णहएयपएसत्थो	५८	१७
णत्ता दब्बसहाव	६४	१६
ण दु णयपक्खो मि-	९६	१७
णाण पि हि पञ्चाप्	१४	३
”	८१	१४
णायव्यं दवियाण	२३	११
णाणं दंरुण सुह	१४	७
”	२८	३
णात्तामहावभरिय	६६	१४
णाम वृवणा दब्बं	९१	११
णासंतो वि ण णट्ठो	११३	१७
णाण दंसण चरण	११७	२१
णादुण मगपमारं	१२०	२
णिम्मोसमत्ताण	६	२
निविमदव्यधि-	८	५
निवरणदीव ९१-	११	१३

"	७५	१०
नियन्त्रमणालसं—	१०	१६
निद्रादो निद्रेण	२८	१४
निघे दम्बे गमणद्वारं	३३	३
निघं गुणगुणिभेदे	"	८
निरवेकं एते	३०	२
निरलेखणपपमाणा	६५	१२
निश्चिती कथूग	६०	६
निष्ठपववहार—	"	२२
निस्सेससहावाण	७३	७
निचत्तभरथि—	७५	१४
नियमनिसेहन—	८६	११
निकोपेणपप—	०३	१५
निशतमयं निव	०५	९
निष्ठप सत्तग—	१०५	१५
निष्ठपदो गतु	१२०	१
निद्रियसत्तो नि—	१२१	१०
नयं जीवमजीव	१३	८
नयं णण उदय	१५	१
नयं जीवमजीव	८०	२०
नो उदयः वधिर	१६	५
"	८३	२०

णोऽगमं पि नि-	०२	९
णो इह भणियञ्च	९३	५
णो वत्रहारेण विणा	०७	१३
	त.	
तच्च विस्मवियप्पं	२	४
”	६८	७
तग्गुणए य परिणदं	०२	१८
तथपरिसहाण भेया	१०७	१०
ता सुयसाथरमहणं	१०५	७
विक्काल्लं जं सत्तं	३०	१५
विस्वपरकंत्तलिसम-	१०२	३
तेऽहुंनि चट्टवियप्पा-	५२	२
तेऽचेव भावस्सवा	”	१२
तेण चट्टग्गइदेहं	५६	१५
	य.	
थावर फल्लेसु चेदा	५३	१२
	द.	
दव्वत्थं दहमेयं	३	१४
दव्वत्थिए य दव्वं	४	५
दव्वार्गं सु प-	११	२
दव्वग्गुणपग्ग-	१२	३
”	७९	२१
दह्मणं पडिक्किं	१३	२

'	११	८०	९
'	दूण भूलभं	१४	८
'	११	८१	१०
'	दूण देहटाणे	१४	१३
'	११	८२	५
'	दन्ना विस्मसहाया	२१	६
'	दमणगाणचरित्ता	२३	४
'	दम्बाण सहभूदा	"	१६
'	दम्बगुणाण सहाया	२६	१३
'	दम्बान गु पद्मा	"	२३
'	दम्बदि दम्बसदि	३०	१०
'	दम्ब विस्मसहायं	३६	७
'	दम्बगाणगावरणं	४४	३२
'	दम्बगाणगुर-	४६	८
'	दम्बगाण पद्मा	४९	१८
'	दम्बगाण १ काळे	६०	७
'	दम्बगाण २ काळे	७०	१५
'	दम्बगाण ३ काळे	७१	८
'	दम्बगाण ४ पद्मा	७८	२२
'	दम्बगाण ५ सहायं	९१	६
'	दम्बगाण ६ दुर्गिहं	९२	५
'	दम्बगाण ७ चरितं स-	९४	३

दंभगजाणव. ३ ५—	"	८
दशमुपादो गम	०५	१८
दशगचरित्तमोदं	०८	१७
दशगकारणमुद	१०४	७
दशगमुद्रिभिमुदो	१०६	३
दल्लमहाव३—	१३१	११
दारियदुग्गयद—	१३०	१८
दिकतागदुपाणुक्रम	१०८	२
दुविह आसवमगं	६१	१२
दुक्खं णिदा चित्ता	११२	१
दुममीरणेण पोयं	१३१	१५
देहीणं पञ्चावा	७	१६
"	७५	३
देसवर्द्ध देमत्थो	१६	१७
"	८४	७
देसं च रज्जदुग्ग	१७	१५
"	८४	१९
देहावारपपसा	२७	२०
देहा य हुंति दु—	५४	१६
देहजुदो सो मुत्ता	"	२२
देवगुरुसत्त्वमत्तो	१०१	२
दो चैव मूळिमणाया	३	६

सत्ते जो णह् मग्गइ	३४	७
सब्बं जह् सव्वगयं	"	१२
सत्थेणिय एयंते	३६	२
सहजं सुदाइजादं	४७	४
समपावत्ति उरस्तासो	५८	११
सत्थेसि पग्गया	५९	१०
सव्वत्थं अत्थि रांधा	"	१५
सत्थेसि अत्थितं	६०	१३
सयमेव कम्मगल्लपं	६३	५
सवियणं जिवियणं	६६	१९
सग्गूदमसग्गूदं	७१	२
सइत्थादिचउत्ते	७३	१२
सत्ताअमुक्खरत्त्वे	७४	१४
सराखुदो आत्थो	७७	१६
सव्वत्थं पग्गयादो	८२	९
सव्वाणं सहावाणं	८५	८
सत्तेव हुत्ति भंगा	८७	२
सदेसु जाणं णामं	९३	१०
सण्णाइभेयभिष्णं	१०३	१
सद्धा सत्थे दंसण	"	९
सम्मा वा मिण्ठा वा	१०६	११
समणा सराय इयरा	१११	१८

समदा तद्द भञ्जार्थं	११२	१८
सद्वाणणाणधरणं	११८	६
सर्व्यासौ सन्मात्रो	"	१५
सम्भगु पेच्छद् जम्हा	१२४	१५
सद्वाणणाणचरणं	११९	१८
संवेयणेण गहिओ	१२२	२
सामण्य विसेसा त्रिय	२६	२
सामण्युता जे गुण	४८	३
सामी सम्मादिट्ठी	६४	१२
सामण्य अह विसेसं	८५	१७
सायार इयर ठवणा	९१	२१
सामण्ये गियवोहे	११२	१०
सामण्यं परिणामी	"	१४
सामण्यं णाणाणं	१२७	१९
सियसदेण विणा इह	४२	५
सियसदेणय पुद्द	"	१०
सियमवेक्खा सम्मा	८६	२
सियजुतो णपणिवहो	८८	१६
सियसरमुणपदुण्यय	१२१	७
मुरणरणारयत्तिरिया	४५	१५
मुद्दो जीवसहावो	५२	१८
मुद्दवेदं मुद्दगोदं	६३	२१

पञ्जाए दल्लगुणा	१३	७
"	८०	४
परमाणु एयदेसी	१३	१३
"	८१	४
परमावादौ मुण्णो	१८	१९
"	१२६	१२
पंचावधजुओ सो	४६	१४
षंहु जविसं चयण	५०	१४
परमथो जो कालो	५७	१९
पञ्जयै गटण किच्चा	७१	१३
पण्णवणभाविभूदे	७८	९
"	"	१४
पच्चपवंतो रागा	९८	२१
परदो इह मुहममुह	१०१	७
पटमं मुत्तसरुवं	११५	७
पस्मदि तेण सरुव	१२१	१०
पारद्धा जा किरिया	८	९
"	७६	४
पुत्ताइअधुवगं	१७	३
"	८४	११
पुणान्दध्वे जा पुण	२६	१२
पुदवी जठं च	२९	१२

दृढमनिरीदियगोहो	१०७	६
दधुण जमगाणे	१२३	१५
विष्मावाशो दधो	४७	०
विगयगिरो षटि-	६०	२
विज्रावण्च सधे	१०७	१४
विबरीपे पुडवधो	१०९	११
वीरं विलयविल्ल	१	१
"	६५	२
सुमाहता त्रिणव-	२	१६
	भ.	
मणइ अणिवा-	७	२१
मण्वगुणादो भग्वा	३८	३
मणिया जे सम्भावा	४१	१३
मणइ अणितामुद्धा	७५	८
भरहे दुग्ममवाणे	१०९	२१
भावेमु राययादी	५	८
भावचटणं चत्त	१९	१२
भावा जेयसहावा	३६	१५
भावो दण्वणिमित्त	४४	१७
भावे सरायमादी	७२	१४
भेदे सदि सवध	५	१८
"	७३	२

■



॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीदेवसेनद्विरचितं

लघु नयचक्रम् ॥



वीरं वित्तयद्विरक्तं विगतमलं विमलणाणमंजुतं ।
पणविपि वीरजिनिदं पच्छा णयलपखणं वोच्छं ॥ १ ॥
वीरं विषयद्विरक्तं विगतमलं विमलज्ञानसंयुक्तम् ।
प्रणम्य वीरजिनेन्द्र पथान्नपलक्षणं वक्ष्ये ॥ १ ॥
जं णाणीण विषय्यं सुयभेयं वत्थुपंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहि ॥ २ ॥
यो शानिना विकल्पः श्रुतभेशे वस्वंससग्रहणम् ॥
स इह नयः प्रोक्तः शाना पुनस्तेरानैः ॥ २ ॥
जम्मा ण णएण विणा होइ णरस्स सियवायपडिवर्ती ।
तद्दा सो षोहव्वो एअंतं हंतुकामेण ॥ ३ ॥
परमान्न नयेन विना भवति नरस्य स्वाद्दादप्रतिपत्तिः ॥
तस्मात्स बोद्धव्य एकान्तं हन्तुकामेन ॥ ३ ॥
जह सद्दाणंमाई सम्मत्तं जह तवाशुणणिलये ।

सम्भूयमसम्भूयं उवयरियं चैव द्विविह सम्भूयं ।
 त्रिविहं पि असम्भूयं उवयरियं जाण त्रिविहं पि ॥
 सद्गतमसद्गतमुपचरितं चैव द्विविधं सद्गतं ।

त्रिविधमप्यसद्गतमुपचरितं जानीहि त्रिविधमपि ॥१५॥

दब्बत्थिए य दब्बं पज्जायं पज्जयत्थिए विसयं ।

सम्भूयासम्भूए उवयरिए च दुणवत्थिए ॥१६॥

द्रव्यार्थिके च द्रव्यं पर्यायः पर्यायार्थिके विषयः ।

सद्गतासद्गते उपचरिते च द्विनवत्रिकर्थाः ॥१६॥

पज्जय गउणं किच्चा दब्बं पिय जोहु गिह्णए सोए
 सो दब्बत्थो मणियो विपरीओ पज्जयन्थो दु ॥१७॥

पर्याय गाणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके ।

स द्रव्यार्थो भणितः विपरीतः पर्यायार्थस्तु ॥१७॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं ।

माणइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेवलो ॥१८॥

कर्मणा न्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशम् ।

मभ्यते स उदयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥१८॥

उपाधिरूपमज्ञानत्वेन सत्तागाहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

उपादस्येणोण किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।

सत्ताइ सत्ताणओ इह सत्तागाहओ समए ॥१९॥

उपादस्येणोण किच्चा जो गहइ केवला सत्ताम् ।

ते न शुद्धनयः इह सत्ताप्राहकः समये ॥१९॥

भेदकल्पनाविरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

गुणियाइचउके अत्ये जो णो करेइ खलु भेयं ।

। सो दच्चत्यो भेदवियप्पेण निरवेवसो ॥२०॥

गुण्वादिचतुष्केपे यो न करोति खलु भेदम् ।

स द्रव्यार्थो भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥२०॥

कर्मोपाधिमापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

। सु रागयादी सज्जे जीवमि जो दु लेपेदि ।

। असुद्धो उत्तो कम्माणोपाहिमावेवसो ॥२१॥

। न् च रागादीन् सर्वेषु जीवेषु यत्तु जल्पति ।

इत्थं असुद्धं हेतुः कर्मणासुपाधिसापेक्षः ॥२१॥

वत्सादभ्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

।।दवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण मणह निद्वयत्वं ।

।।स एयगमये जो दु असुद्धो हवे विदियो ॥२२॥

।।दवयविविगिआं सत्ता गृहीत्वा मणति निद्वयत्त्वं ।

।।स्येयसमये वो असुद्धो भवेद्द्वितीयः ॥२२॥

भेदकल्पनाविरपेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

।।सदि संवेधं गुणगुणियार्थेण कृत्वा जो दच्चं ।

।।वि असुद्धो दिट्ठो सहियो सो भेदकल्पेण ॥२३॥

।।सति सम्बन्धं गुणगुणियार्थेण कोणे वो दच्चं ।

।।असुद्धो एतः सहितः न भेदकल्पेण ॥ २३ ॥

इदमेवमुचरता भणइ सो साहयिच्च णअ ॥ २८ ॥

पर्मक्षयात्मासोऽयिनासी यो हि काग्णाभावे ।

इदमेवमुचरम्भयते म सादिनित्यनयः ॥ २८ ॥

सभागौणत्वेनोत्पादव्ययमाहकः स्वभाषानित्यशुद्धपर्या-
यार्थिकः ।

मत्ता अमुवस्वरूपे उत्पादवर्यं हि गिह्याए जो इ ।

सो इ सहाव अणिच्चो भणइ खलु सुद्धपञ्जायो ॥ २

मत्ताऽगुह्यरूपे उत्पादव्ययी हि गृह्णाति यो हि ।

स तु स्वभाषानित्यो भण्यते खलु शुद्धपर्यायः ॥ २९ ॥

सत्तासापेधः स्वभाषानित्यः अशुद्धः पर्यायार्थिकः ।

जो गहइ एकसमए उत्पायवयद्ववचामंजुत्तं ।

सो सन्भाव अणिच्चो अमुद्धओ पञ्जयर्थाओ ॥३०

यो गृह्णाति एकममेव उत्पादव्ययभुन्वमंयुक्तम् ।

म मद्भाषानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकः ॥ ३० ॥

कर्मोपाधिनिरपेधः स्वभाषानित्यः शुद्धः पर्यायार्थिकः ।

देहीणं पञ्जाया शुद्धा सिद्धाण भणइ सारिथा ।

जो इह अणिच्च शुद्धो पञ्जयगाही हवे स णओ ॥३१

देहिनां पर्यायाः शुद्धाः सिद्धानां भणानि सदृशाः ।

ए इहानित्यः शुद्धः पर्ययगाही भवेत्स नयः ॥ ३१ ॥

कर्मोपाधिसापेक्षो विभाषानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थनयः ।

भणइ अणिच्चाशुद्धा चउगइजीवाण पञ्जया जो इ ।

(८)

होइ विभाव अगिरुचो अगुद्वजो पञ्चवद्विभक्तो ॥
भगवन्निगद्युदाधुर्गतिर्भ्रान्तो पर्यवस्यो दि ।
भवति विभावानियोऽगुद्वर्णार्थिको नयः ॥ ३२ ॥

भूतमाधिवर्तमानकाष्ठभेदाग्नैगमश्चिवा ।

पिचिचद्व्यहीरया वद्वणकाले दृ जं समानत्वं ।
नं भूयणइगमणयं जह अठ पिच्युइदिपं वीरे ॥३३॥
निर्हृतद्व्यक्रिया वर्तने काष्ठे तु कसमावरणम् ।

स भूर्तनगन्नयो यथा अथ निर्हृतिदिनं वीरस्य ॥ ३३ ॥

पाग्द्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो मिश्र
लोए य पुच्छताणे तं भण्यइ वद्वमागणयं ॥ ३४ ॥

मान्धा या क्रिया पचनविधानादिः कथयति यः निशम् ।

लोकं च पृच्छ्यमाने स भण्यते वर्तमाननयः ॥ ३४ ॥

पिष्पणमिच पर्यपदि माविपयत्ये गरो अणिष्पण्यं ।

अष्पत्ये जह पन्थं भण्यइ सो माविणइगमोणि गजो ॥

निष्पणमिच प्रजल्पति माविपदार्थे नरोऽनिष्पन्नम् ।

अप्रस्थे यथा प्रस्थ भण्यते स माविनैगम इति नयः ॥३५॥

सामान्यसंप्रहो विशेषसंप्रहोऽति संप्रहो द्वेषा ।

अधरे परमविरोहे सत्त्वं अतिथिनि मुद्रसंगहणो !

होइ तमेव अमुद्वो इगजाइविसेसगहणेण ॥ ३६ ॥

अधरे परमविरोधे सर्वे अस्ति इति शुद्धसंगहणं ।

भवति स एवाशुद्धः एकजातिविशेषमहणेन ॥ ३७ ॥

नामागमसङ्घटभेदो व्यवहारो विद्येयसङ्घटभेदकभेदि व्यव
 हारोऽपि द्वेषा—

जं मंगलेण गतिं भयं अर्थं असुद सुदं वा ।

मो वयदाने दुषिहो असुदसुदार्थभयकरो ॥३७॥

य मङ्गलेण गृहीत भिनति अर्थं असुद सुद वा ।

य व्यवहारो द्विविधोऽनुसुदाप्यभेदपर ॥३७॥

सुधमर्जुमूत्र म्भुनर्जुमूत्रभेदसुगुणोपि द्विविध ।

जो एयगमयपटी गिदणर दव्ये पुवत्तपञ्जाओ ।

मो रिउगुणो सुगुणो मय्यं पि सदे जहा मणियं ॥३८॥

य एकममवर्तिनं गृह्णाति दव्ये भुक्त्वपयोधम ।

य प्रदुगुमूत्र सुधम सर्वमपि सद्यथा क्षणिकम् ॥३८॥

मणुवाइयपञ्जाओ मणुगुचि मगहिदीसु वहुवो ।

जो मणइ तापकालं मो धूलो होइ ग्ठिगुणो ॥३९॥

मनुजादिफरवाओ मनुष्य इति स्वकास्थितिषु वर्तमान ।

यो मणनि तापकालं स स्थलो भवति ऋतुगुत्र. ॥३९॥

हापरममभिरुद्वैवंभूताक्षैरेके उता नयभेदा. ।

जो वटुर्णं य मणइ एयहं भिष्णालिङ्गमार्णं ।

सो गहणओ भणिओ पौओ पुस्ताइयाण जहा ॥४०॥

यो वर्तनं य मन्यते एवार्थे भिज्जटिगादीनाम् ।

स शब्दनयो भणित श्लेषः पुष्पादीनां यथा ॥४०॥

अहवा निदे सदे फीरु जं किंपि अत्यवबहरणं ।

तं वन्द सदे विसयं देवो सहेण जह देवो ॥४१॥

मथवा निदं गन्तुं कर्तेति यः शिवायि मय्यव्यग्राग्नर ।

म सत्तु शब्दस्य विरयः देवशब्देन यथा देवः ॥४१॥

सदाशुद्धो अन्यो अत्याशुद्धो तदेव पुण मज्ञे ।

मणइ इह समभिरुद्धो जइ इंद पुगंदरो सके ॥४२॥

शब्दाशुद्धोऽर्थोऽर्थाशुद्धमथैव पुन. शब्दः ।

मणनि इह समभिरुद्धो यथा इन्द्रः पुगंदरः शक्रे ॥४३॥

ने जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचिदाहिं ।

तं तं सु णामजुत्तो एवंभूओ हवे म णओ ॥४३॥

यजकुस्तो कर्म देही मनोवचनकायचेष्टतः ।

तत्तत्खलु नामयुक्त एवंभूतो भवेऽम नयः ॥४३॥

पढमतिथा दश्वर्त्थी पज्जयगाही य इयर जे मनिप

ते चहु अत्थपहाणा सहपहाणा हु तिण्णियरा ॥४४॥

प्रथमत्रिका द्रव्यार्थिकाः पर्यायप्रादिणश्चेतरे ये भजिता. ।

ते कत्वारोऽर्थप्रधानाः शब्दप्रधाना हि त्रय इतरे ॥४४॥

पण्णवणमाविभूदे अत्थे जो सो हु भेयपज्जाओ ।

अह तं एवंभूदो संभवदो मुणइ अत्थेसु ॥४५॥

प्रज्ञापन माविभूतेऽर्थे यः स हि भेदपर्यायः ।

अथ स एवंभूतः समवनो मन्यच्च अर्थेषु ॥४५॥

उपनयभेदाः कथ्यन्ते ।

गुणगुणिपज्जयदब्बे कारयसम्भावदो य दब्बेसु ।

सण्णाईहि य भेयं कुणाह मच्चभूयसुद्धियरो ॥४६॥

गुणगुणिपर्ययदब्बे कारकसंज्ञायनध दब्बेषु ।

संज्ञादिभिर्भेद करोती गृह्यतस्तुद्विवरः ॥४६॥

दन्वार्णं तु पण्मा बहुगा व्यवहारदो य इवेण ।

अण्णेण य निच्छयदो भणिया का तन्ध सत्तु इवे नुणी
॥४७॥

दन्वार्णां सत्तु प्रदेत्ता बहुगा व्यवहारतध एकेयाम् ।

अन्वेन च निधयतो भणिया. का तत्र सत्तु भवेत्तुक्तिः ॥

तदुच्यते ।

व्यवहाराश्रयाद्यन्तु संख्यातीतप्रदेशान् ।

अभिजात्यैकदेशित्वादेकदेशोऽपि निधयान् ॥१॥

अणुगुरुदेहपमाणो उपमहारप्पमप्पदो चेदा ।

अममुहदो व्यवहारा निच्छयणयदो अमंखदेशो वा ॥४८॥

अणुगुरुदेहप्रमाण. उपसहारप्रमपंत चेतयिता ।

असमुहताद् व्यवहारात् निधयनयतो नम्यदेशो वा ॥४८॥

एयपदेमं दन्वं निच्छयदो भेयकप्पणाराहिदा ।

संभृण्णं बहुगा तस्म य ते भेयकप्पणामहिण् ॥४९॥

सुद्धमद्गतव्यवहारोऽसुद्धमद्गतव्यवहारः इति चङ्गतोऽपि विधा

स्वजातीयमद्गतव्यवहारो विजातीयमद्गतव्यवहारः स्वजातीय

विजातीयमद्गतव्यवहार इति अमद्गतोऽपि विधा ।

अण्णोर्भि अत्र गुणा भणइ अमन्भूय त्रिविहभेदेवि ।

सम्जाइह्यरमिस्सो णावव्यां त्रिविहभेदसुदो ॥५०॥

अन्वेणामत्र गुणा भणिया अनद्गतविधिभेदेऽपि ।

विजातीय इतरो भिन्नो ज्ञानव्यतिरिक्तस्त्वजः ॥५०॥

जगद्गतम्पदहारनवभेदात्पदं वति ।

द्व्यगुणपञ्जयाणं उच्यार होइ ताण नन्येव ।

द्व्य गुणपञ्जया गुणे द्वियपञ्जया णेया ॥५१॥

द्व्यगुणपर्यायाणां उपचारो भवति तेनां तत्रैव ।

द्व्ये गुणपर्यायी गुणे द्व्यपर्याया ज्ञेयाः ॥५१॥

पञ्जायै द्व्यगुणा उपपरियव्या हु धंधसंयुता ।

संबंधे संसिलेगो णाणीणं णेयमादीहि ॥५२॥

पर्याये द्व्यगुणा उपचरितव्या द्वि मन्धसंयुक्ताः ।

संबन्धे संश्लेषे ज्ञानिनां नैगमादिभिः ॥५२॥

विजातीयद्रव्ये विजातीयद्रव्यारोपणोत्सङ्गतव्यवहारः ।

एहंदियादिदेहा णिच्चत्ता जेवि पोग्गले काये ।

ते जो भणेइ जीवो व्यवहारो सो विजातीयो ॥ ५३ ॥

एकेन्द्रियादिदेहा निधिता येऽपि पौद्रले काये ।

ते ये भणिता जीवा व्यवहारः स विजातीयः ॥ ५३ ॥

विजातीयगुणे विजातीयगुणारोपणोत्सङ्गतव्यवहारः-

मुचं इह महणाणं मुचिमद्व्येण जण्णियं जह्वा ।

जह णह्मु मुचं णाणं ता कह खलियं हि मुचेण ॥५४॥

मूर्त्तमिह मतिज्ञानं मूर्त्तैकद्रव्येण जनितं यस्मात् ।

यदि नहि मूर्त्तं ज्ञानं तत्कथं खलितं हि मूर्त्तेन ॥ ५४ ॥

स्वजातीयपर्याय स्वजातीयपर्यायायरोपणोऽसद्गतव्यवहारः ।

दह्मं पठिरिबं भवति ह्यु तं चैव एव पञ्चाशो ।

मञ्जाइअसम्भूओ उवपरिओ णिययजातिपञ्चाशो

॥५६॥

एषू इतिविबं भवति हि स चैव एव पर्यायः ।

स्वजात्यसद्गतोपपरितो निजजातिपर्यायः ॥५६॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिविजातिगुणारोपणोऽसद्गतव्यवहारः ।

णेयं जीवमजीव तं पिय णाणं तु तस्स विस्सयादो ।

जो भणइ एरिसत्थं षवहारो सो अमच्चूदो ॥५७॥

इय जीवमजीव तद्वि च ज्ञान एतु तस्य विपयात् ।

यो भणति ईदशार्थं व्यवहारः सोऽसद्गतः ॥५७॥

स्वजातीयद्रव्ये स्वजातीयविभावपर्यायायरोपणोऽसद्गतव्यवहारः-

परमाणु एयदेसी बहुप्पदेसी पर्यपदे जो हु ।

सो षवहारो णेओ दव्ये पञ्जायउवयारो ॥५८॥

परमाणुरेकदेशी बहुप्रदेशी प्रवत्तपति यस्तु ।

स व्यवहारो ह्येवः दव्ये पर्यायोपचारः ॥५८॥

स्वजातिगुणे स्वजातिद्रव्यारोपणोऽसद्गतव्यवहारः-

रूवं पि भणइ दव्वं षवहारो अण्णअत्थसंभूदो ।

सेओ जह पासाणो गुणेषु दव्वाण उवयारो ॥५९॥

रूपमपि भणति दव्वं व्यवहारोऽन्यार्थसंभूतः ।

येनो काले चरन्ते गुण्युः स्वर्गात्पुनरागतः ॥६०॥

स्वर्गात्पुनरागतः स्वर्गात्पुनरागतः स्वर्गात्पुनरागतः

प्राणं पि द्वि पञ्जायं पणिममाणं तु मिदुग्यं त्रै ह्र ।

ववहारो सन्तु जंपट गुण्युः उच्यते पञ्जायं ॥६०॥

ज्ञानमणि ईः पञ्जायं पणिममाणं तु गुण्युः पञ्जु ।

स्वर्गात्पुनरागतः स्वर्गात्पुनरागतः ॥६०॥

स्वर्गात्पुनरागतः स्वर्गात्पुनरागतः स्वर्गात्पुनरागतः

ददृषु धूलमंधो पुग्गलद्व्यंनि जंपट लोम ।

उच्यते पञ्जायं पुग्गलद्व्यंनि जंपट ववहारो ॥६१॥

दृष्ट्वा स्थूलस्फुटं पुद्गलद्व्यंनि ज्ञानं त्रै ह्र ।

उच्यते पर्याये पुद्गलद्व्यंनि भवति व्यरद्व्य ॥६१॥

स्वर्गात्पुनरागते स्वर्गात्पुनरागते स्वर्गात्पुनरागते

ददृषु देहठानं वण्णतो होइ उच्यते न्यं ।

गुणउच्यते भणिओ पञ्जायं णत्वि मंदेहो ॥६२॥

दृष्ट्वा देहस्थानं वर्ण्यमानं भवति उत्तमं न्यं ।

गुणोपचरो भणितः पर्याये नाम्नि सदेहः ॥६२॥

सदृशपञ्चयादो संतो भणिदो जिणेहि ववहारो ।

जस्त ण हवेइ संतो हेउः दुह्णं पि तस्त कुदो ॥६३॥

उच्यते धर्मव्ययतः सतो भणितो जिनेर्व्यवहारः ।

न भवेन्मत् हेतू द्वावपि तस्य कुत ॥६३॥

पउमा इह संमारो तस्स य हेऊ सुहासुहं कम्मं ।

जा तं मिच्छा नो किह समारो संखामिव तस्समये

॥६४॥

धनुर्गनिरिह संमारस्वस्य च हेतु. शुभाशुभ कर्म ।

यदि तन्मिष्या तर्हि कथं ससारः साख्य इव तसमये ॥६४॥

एतेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारदो नु जिणदिहा ।

हिमादिषु जदि पावं मच्चत्यो किं ण व्यवहारो ॥६५॥

एतेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारतन्नु जिनदृष्टा ।

हिमादिषु यदि पाप सर्वत्र किं न व्यवहार ॥६५॥

बंधं वि मुखद्वेऊ अण्णो व्यवहारदो ये णायध्वा ।

णिच्छयदो पुण जीवो भणिओ खलु मच्चदरणीहिं ॥६६॥

मन्वेऽपि मुखद्वेतुरन्यो व्यवहारतथं ज्ञानव्य ।

निभवत पुनजीवो भणितः खलु सर्वदर्शिभि ॥६६॥

जो चं व जीवभावो णिच्छयदो होइ सच्चजीवाणं ।

तो चिय भेदुवयारा जाण कुटं होइ व्यवहारो ॥६७॥

यधैव जीवभाव निश्चयतो भवति सर्वजीवानाम् ।

स चैव भेदोपचारात्कुटं भवति व्यवहारः ॥६७॥

भेदुवयारो णियमा मिच्छादिहीण मिच्छरूपं खु ।

सम्मो सम्मो भणिओ नेहि दुबंधो ष मुखो वा ॥६८॥

भेदोपचारो नियमान्मिष्यादृष्टीनां मिष्यारूपः खलु ।

सम्यक्त्वे सम्यक् भणितः संसु बन्धो वा मोक्षो वा ॥६८॥

ण मुण्ड वत्युसहावं अह विवरीयं सु मुण्ड गिस्वां
तं इह मिच्छाणाणं विवरीयं सम्मरुवं सु ॥६९॥
न मनोति वस्तुस्वभावं अथ विपरीतं खलु मनोति निरंज
तदिह मिथ्याज्ञानं विपरिणितं सम्यग्रूपं तु ॥६९॥
षो उवयारं कीरइ पाणस्स हु दंसणस्स वा वेद ।
किह गिच्छिणीणाणं अप्पोसि होइ गियमेण ॥७०॥
नो उपचारं कृत्वा ज्ञानस्य हि दर्शनस्य वा ज्ञेये ।
कार्यं निश्चिन्तिज्ञानमन्येषां भवति नियमेन ॥७०॥

इति अमद्भूतव्यवहारः ।

उवयारा उवयारं सत्त्वामर्चं सु उहयअत्येसु ।
सज्जाइइयरमिस्सो उवयारिओ कुणइ व्यवहारो ॥७१॥
उपचारादुपचारं सत्त्वासात्थेपु उभयार्थेपु ।
सजातीतरमिग्गेषु उपनरिन. एतोति व्यवहारः ॥७१॥

सजातीयोपचरितामद्भूतव्यवहारं निजातीयोपचरितामद्भूत

व्यवहारः सजातीपरिजातीयोपचरितामद्भूतव्यवहारः

इति उपचरितामद्भूतोति केषा ।

देसयं देसन्धो अन्यवणिज्जो तद्देव जंपंतो ।
मे देसं मे दय्यं सत्त्वामर्चंपि उभयार्थं ॥७२॥
देशगति देशान् अर्थवतिथेः तथैव जल्पन् ।
स्य देशो मम दय्यं सत्त्वागलमपि उभयार्थम् ॥७२॥

स्वजातीयद्रव्ये स्वजातीयद्रव्यारोपणमुपचरिता-
सद्भूतव्यवहारः -

पुषादपेभुवग्मं अहं च मम संपयाइ जंपतो ।

उपचारामन्भूओ गजाइद्व्येमु णायप्यो ॥ ७३ ॥

पुषादिवपुषागं. अहं च मम संपयाइ जज्जन् ।

उपचारामद्गतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्य ॥ ७३ ॥

विजातीयद्रव्ये विजातीयद्रव्यारोपण उपचरितासद्भूत-
व्यवहारः--

आहरणहेमरयणं चत्यादीया ममणि जंपतो ।

उपचारअगन्भूओ विजातिद्व्येमु णायप्यो ॥ ७४ ॥

आभरणहेमरनानि वत्यादीनि ममेति जज्ञन् ।

उपचारासद्गतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्य ॥ ७४ ॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजानिद्रव्यारोपण उपचरितासद्भूत-
व्यवहारः--

देमं च रज्ज हुग्मं एयं जो चेव भणइ मम सर्व्वं ।

उहयत्ये उपचरिओ होइ असम्भूयवपहारो ॥ ७५ ॥

देशश्च राज्य हुग्मं एयं पक्षेव भणति मम सर्व्वम् ।

उभयार्थे उपचरितो भणत्यसद्भूतव्यवहारः ॥ ७५ ॥

एयंते विरवेवखे णो सिज्जइ विविहभावगं दव्वं ।

तं मह वयणयंते इदि पुज्जइ सिवअणयंतं ॥ ७६ ॥

एकान्ते निरपेक्षे नो सिद्धयति विविधभावगं द्रव्यम् ।

तत्तथा वचनेऽनेकान्ते इति मुष्यत स्वादनेकान्तम् ॥ ७६ ॥--

व्यवहारादो बंधो मोक्षो जज्ञा सहायमंभुनो ।
 नक्षा कर नं गडणं सहायमारारहणाले ॥७५॥
 व्यग्रहागन् वन्दो मोक्षो यस्मात्सहायनंभुक्तः ।
 तस्मात्कुह त गौण स्वभावमारधनाकाळे ॥७७॥
 जह रससिद्धो पद्मि हेमं काज्ज संजवे भोगं ।
 तह णय सिद्धो जोई अप्पा अप्पुह्वद अणवरयं ।
 यथा रससिद्धो वैद्यो हेमं कृत्वा भुनक्ति भोगम् ।
 तथा नयसिद्धो योगी आमानमनुभवन्नकरतन् ॥७८॥
 मोक्षं च परममोक्षं जीवे चारित्र्यमंभुदे दिष्टं ।
 वट्टं तं जह्वन्ने अणवरयं भावणालीने ॥७९॥
 सौख्यं च परमसौख्यं जीवे चारित्र्यमंभुत दृष्टम् ।
 षर्तते तद्यतिर्गो अनवरत भावणालीने ॥८०॥

विभावस्वभावाभावत्वेन भावना-

रायाइभावकम्मा मज्झ सहावा ण कम्मजा जज्ञा ।
 जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८०॥
 रागादिभावकर्माणि नम स्वभावा न कर्मजा यस्मात् ।
 यः संवेदनमाही मोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८०॥

सामान्यगुणप्रधानत्वेन भावना-

परभावाद्दो गुणो मंपुण्णो जो हु होइ जियभावे ।
 जो संवेयणगाही मोहं णादा हवे आदा ॥८१॥
 परभावः नृत्यः संपूर्णो यो हि भवति निजभावे ।
 संवेदनमाही मोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८१॥

विषयद्रव्यभावाभावेन भावना—

जडमन्मायो पादु मे जडा तं जाय विष्णुजडद्वयं ।

जो संवेदनग्राही सोहं पादा हवे आदा ॥८२॥

जडरथभावो न मे दम्भात्त जनाहि भित्तुःद्रव्ये ।

य संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाभ्यामा ॥८३॥

विदोपगुणप्रधानत्वेन भावना—

मग्ना नहायं पापं दंभेण चरणं न किमपि आदरम् ।

जो संवेदनग्राही सोहं पादा हवे आदा ॥८३॥

मम स्वभाव ज्ञान दर्शन चरणं न किमपि आदरणम् ।

य संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाभ्यामा ॥८३॥

स्वस्वभावप्रधानत्वेन भावना—

भावचउदकं चचं संपन्नो परमभावतन्मायं ।

जो संवेदनग्राही सोहं पादा हवे आदा ॥८४॥

भावचनुक्तं स्वस्वत्वं सम्पन्नं परमभावतन्मायम् ।

य संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाभ्यामा ॥८४॥

णियपरममाणसंजनिन लोपिणो चारुचेदणार्णदं ।

जइया तइया कीलइ अप्पा जियप्पमावेण ॥८५॥

निजपरमज्ञानसंजनितं योगिनः चारुचेतनानन्दम् ।

यद्ग तद्ग जात्रीइति आत्मा अधिकरत्भावेन ॥८५॥

लवणं य एत भणियं पयचदं तयलत्तयगुदियरं ।

सम्माचिगुयं मिच्छा जीवाणं मुजयम्मग्गदियाणं ॥८६॥

लवणमेव एतन्नमित नयचक्रं सकलशास्त्रगुदियरम् ।

मन्त्रविभुतं विद्या प्रीयतां सुखयन्तं देवदत्तं ।
 नत इत्येव उवाच ॥ अस्मान्महोदधिं मुनिवर
 गो पातुं कुतश्च मयं जपन्ते दुर्गरतिनिवहणं
 वरिः इत्यथ उवाच ॥ अस्मान्महोदधिं मुनिवर ।
 मयि ननु कुतश्च मयि नपन्ते दुर्गरतिनिवहणं ॥

॥ इति लघुनयचक्र दशमेनहनं समाप्तम् ॥



॥ ॐ ॥

कुन्दकुन्दाचार्यहृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वरोपकाराय
शभासप्रकाशकं नयचक्र मोक्षमार्गं कुर्वन् सन्धकर्ता निर्दे-
शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं सिद्धाचारप्रतिपादनं पुण्यावानि ना-
सापरिहारं फलमभिलषन् शास्त्रादीं इष्टदेवताविशेषं नम-
नाह ' द्रव्ये ' नि.

एष्या विस्सनहाया लोयायासे सुनंठिया जेहि ।
दिहा वियालविसया वंदेहं ते विणे मिद्धे ॥ १ ॥
द्रव्याणि विश्वरभावानि लोकाकाशे सखितानि यै ।
दृष्टानि त्रिकालविषयाणि फन्देऽहं तान् जिनांसिद्धान् ॥
इष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य ध्याप्यंयमतिमानिर्देवार्थ-
माह ' अ जिति '—

जं जं जिनेति जिहं जम दिहं सज्यद्व्यसुव्माथं ।
पुयस्यर नंदिद्वं त एह संदेत्यदो दोन्ठं ॥ २ ॥
यो यो जिं जेते यथा एह सर्वद्रव्यसमाव ।
पूर्वापरविहं ॥ तथा संशेपरो वदरे ॥

स्वभावव्यमादिनांरेऽन्वनिर्णायुपचारं प्याघटे ' जीयेति '
जीवा पुनःउहाला यन्नायम्मा तदेव आयामं ।
पियपियसहाननुषा दृष्टव्या पररमाणेहि ॥ ३ ॥
जीवा पुनःउहाला धर्माधर्मो तथैवाकारम् ।
निजनिजस्वभावपुला दृष्टव्या नयप्रमाणिः ॥

स्वभावस्य नामान्तरं त्रये ' तसमित्यादि '—
तच्च एह परमं द्रव्यसदाचं तदेव परमपरं ।

धेवं मुद्ध परमं ण्यद्वा हुंनि अमिहाणा ॥ ४ ॥

तत्र तथा परमार्थं द्रव्यस्वभावस्तथैव परमपरम् ।

एवं शुद्धं परमं ण्यद्वांनि मयन्त्यमिधानानि ॥

स्वभावस्वभाविनोऽर्थाणि दर्शयति—

एदेहि त्तिनिहल्लोगं णिप्पण्णं खलु णहेण तमलोयम्

तेणेदं परमद्वा भणिया सम्भावदरसीहिं ॥ ५ ॥

ते पुण काण्णभूदा लोयं कज्जं वियाण णिच्छपदो

अण्णो कोधि ण भणियो तेसि इह कारणं कज्जं ॥

एतेच्चिविधां लोकों निप्पन्नः खलु नमसा स अलोकाः ।

तेनैते परमार्था भणिताः स्वभावदर्शिभिः ॥

ते पुनः काण्णभूता लोके कार्यं विजानीहि निधयतः ।

अन्वः कोधि न भणितस्तेषामिह कारणं कार्यम् ॥

एकश्रेयनिवाति चैन संकगदिदोपपरिहारमाह—

अवरोप्परं विमिप्प्या तह अण्णोण्णाचमासदो णिधं ।

संगो वि एयतेत्ते ण परसदावेहि गच्छंति ॥ ७ ॥

पारम्पर विमिप्रास्तथाऽन्योऽन्यावकाशतो निवृत्तम् ।

सन्नोऽन्येकक्षेत्रे न परस्वभावेर्गच्छन्ति ॥

इति पौडिषानिर्देशः ।

अथ तस्या विशेषन्यायानामधिकारारम्भ —
 गुणपञ्चाया ददियं काया पंचस्थि मस्य तद्गणि ।
 अण्णैवि नव पयत्था पमाण णय तद्वय णिरस्येवं ॥८॥
 दंसणणाचरिच्चा कमसो उवयारभेदइदेरोह ।
 दव्यमहावपयासे अहियारा चारमवियप्पा ॥९॥
 गुणपर्याया द्रव्य काया पचास्ति सप्त तन्त्रानि ।
 अन्येऽपि च नव पदार्थाः प्रमाण नयास्तथा च निक्षेपा ॥
 दर्शनज्ञानचारिणाणि प्रामश उपचारभेदेतरं ।
 द्रव्यस्वभावप्रकाशे अत्रिकारा द्वादशविकल्पाः ॥

अथ सूत्रनिर्देशस्तथाधिकारव्यवस्थाणां प्रयोजनं निर्दिशति —
 णायव्यं ददियारणं लवखणमंनिद्विहेउगुणणियरं ।
 तह पञ्जायलहावं एयंतविणामणद्धा मि ॥१०॥
 ज्ञातव्य द्रव्याणां लक्षणसत्तिद्विहेतुगुणनिकरम् ।
 तथा पर्यायस्वभावः एकान्तविनाशनार्थ अपि ॥

गुणस्य स्वस्वपं भेदं च निरूपयति -
 द्रव्याणं महभूदा (१) सामण्णविसेमदां (२) गुणा णेया
 मच्चेमि सामण्णा दह भणिया मोलन विमेषा ॥ ११ ॥
 द्रव्याणा सहभूताः सामान्यविशेषतो गुणा ज्ञेयाः ।
 सर्वेषां सामान्या दश भणिताः षोडश विशेषा ॥

१ ' द्रव्याणा सहभूता ' इतिवदेन द्रव्यमहभावितो गुणा
 । गुणलक्षण फणितम् ।

२ ' सामण्णविसेमदा ' इत्यनेन गुणाणां द्वौ भेदौ प्रकृतौ

दशमामान्यगुणानां नामानि आह-

अश्विचं वत्थुचं द्रव्यत प्रमेयत अगुरुलहुगुचं ।
देवत चेदणितरं मुत्तममुत्तं वियाणह ॥ १२ ॥

अस्मिन् वस्तुन्व द्रव्यन्व प्रमेयत्वमगुरुलहुगुचम् ।

उशनं चेतनमितरद् मूर्तममूर्तं विज्ञानोहि ॥

षोडशविशेषगुणानां नामान्याह-

णाणं दंमण मुह सत्तिरुवरन गंध फाम गमणठिदी (१)

चट्टणगाहणहेउं मुत्तममुत्तं गु चेदणितरं च ॥ १३ ॥

ज्ञान दर्शनबुद्धशक्तिरूपरसगन्धस्पर्शनभनस्थिति ।

धर्तनाग्माहनहेतुं मूर्तममूर्तं एतु चेतनमितरच्च ॥

ज्ञानादिषडशपुणानां संभवभेदानाह-

अहचदु णाणदंमणमेया सत्तिमुहस्म इह दो दो ।

घण्णरव पंच गंधा दो फासा अह णाथव्वा ॥ १४ ॥

अह चन्वारो ज्ञानदर्शनभेदाः सत्ति (२) मुत्तस्वेह (३) ही ही ।

वर्णरसाः पच गन्धा ही स्पर्शा अह त्रातव्वा ॥

पडद्वयेषु प्रत्येकं सम्भवत्सामान्यविशेषगुणान्तररूपवति-

एकेके अहहा सामण्णा भूति सव्वदव्वाण ।

१ पूर्वं गमनस्थितिवर्तनाग्माहनपदानां परस्परं इत्ये
तदुपदेन सह पट्टीतरुस्वेथ हने पधागुणादिपदानां समाहारः
(समाहारे ननुपक्रमेकत्वम्) इति नपुंसकान्तकान्तेकवचनप्रयोगः ।

२ धावोक्तनिष्ठी सत्ति क्षाधिकी चेत् सत्तेही भेदी ।

३ इन्द्रियजगतीन्द्रियं चेत्तु गुणव्य ही भेदी ।

अथ ततोऽप्युक्तं कालं भवेत् न निर्गता -

सामान्य विमेषा वि य जे यहा दक्षिण द्युनामंज्या
 परिणाम अह विषातं नाजं ते पञ्जये दूरिदं ॥ १७ ॥
 सामान्य विमेषा अवि न ये विमेषा द्रव्यभेदकालात् ।
 द्रव्यभेदोऽथ विमेषाभेदात् न पर्यायो विमेषः ॥

पर्यायद्वैविध्यं निवृत्त्यं जीवादिद्रव्येषु कालः पर्यायो भवति न
 सत्त्वात् तु विहायं द्रव्याणं पञ्जयं त्रिशुद्धिं ॥
 मध्येषि च महारं विमेषं जीवपुण्यत्वात् न ॥ १८ ॥
 अत्रापि गत विमेषो द्रव्याणां पर्यायो विमेषः ।
 सर्वेषां च अत्रापि विमेषो जीवपुण्यत्वात् ॥
 द्रव्यगुणयोः स्वभावविभाषाभेदात् पर्यायाणां चातुर्विध्यं
 निरूपयति -

द्रव्यगुणाणाम् महाया पञ्जायं तद् विहावदो जेयं ।
 जीवे जीवमहावा ने वि विहावा हु कम्मकदा ॥ १९ ॥
 द्रव्यगुणयोः स्वभावात्पर्यायस्त्वथा विभाषतो ज्ञेयः ।
 जीवे जीवस्वभावाः तेऽपि विमेषा हि कर्मकृताः ॥
 उक्तं चान्यत्र अन्वे -

पुण्यलद्वये जो पुण विभाओ कालपरिओ होदि ।
 मो णिद्वरुक्वसहिदो बंधो खलु होइ तस्सेव ॥२०॥
 ए पुन विभाव. कालपरितो भवति ।

सिन्धुसहितो बन्धः खलु तस्यैव ॥

द्रव्यस्वभावपर्यायान्संदर्शयति -

द्रव्याणं तु पर्येसा जे जे ससहाव संठिया लोए ।

ते ते पुन पञ्जाया जाण तुमं दयिण सम्भावे ॥२१॥

द्रव्याणां खलु प्रदेशा ये ये स्वभावसम्पिता लोके ।

ते ते पुनः पर्याया जानीहि न्व द्रव्याणां स्वभावान् ॥

गुणावभाषपर्यायान्प्रदर्शयति

अगुरुलहृणा अणता समयं समयं समुद्भवा ले वि ।

द्वयार्णं ते भणिया सहायगुणपञ्जया जाण ॥ २२ ॥

अगुरुलघुना अनन्ताः समयं समयं समुद्भवन्ति वेद्यं ।

द्रव्याणां ते भणिता स्वभावगुणपर्यायाः जानीहि ॥

जीवद्रव्यविभावपर्यायान्निर्दिशति—

जे च्छुगदिदेहीणं देहाचारं पदेनपरिमाणं ।

अह विग्रहगृहीये तं द्रव्यविहावपञ्जायं ॥२३॥

यश्चतुर्गनिदेहिनां देहाकारः प्रदेशपरिमाणः ।

अथ विग्रहगृहीये स द्रव्यविभावपर्याय ॥

जीवगुणविभावपर्यायान्निर्दिशति—

मदिगुदओहीमणपञ्जयं च्छण्णाण तिप्पि जे भणिया ।

एवं जीवम्म इमे विहायगुणपञ्जया सव्ये ॥२४॥

मत्तिथुतादधिमेनःपर्याया अज्ञानानि क्षीयिच ये भणिताः ।

एव जीवस्येमे विभावगुणपर्यायाः सव्ये ॥

जीवद्रव्यत्वभाषपर्यायान्प्रदर्शयति—

देहाचारएसा जे थक्का उहयकम्मणिन्धुक्का ।

जीवस्स णिचला खलु ते गुहा द्रव्यपञ्जाया

देहाकारप्रदेशा ये स्थिता उभयकर्मनिर्मुक्ताः ।

जीवन्निष्कामः सत्यमेव सुखा इत्यन्तः ॥२५॥

जीवन्मुक्तत्वव्याख्यायां विद्वान्महोपाध्याय-
जीवन्मुक्तत्वव्याख्यायां विद्वान्महोपाध्याय-

शान्तं दमय मुह वीर्यं च जं उदय इत्यन्तः ॥२६॥

तं मुदं जान तुमं जीवे मुणवन्तं मनं ॥२६॥

ज्ञानं दर्शनं मुनं वीरं च बहुधा कर्मणोऽपि ॥

तं मुदं जानति त्वं जीवन्मुक्तत्वव्याख्यायां ॥२७॥

सत्यमेव सुखा इत्यन्तः ॥२७॥

विनाप्यस्य तदित्यन्तः ॥२७॥

मुक्ते परिणामादो परिणामो निद्वेगस्य मुणवन्तो ॥

एतच्चरमेगादी बहुधा अत्रानु उदयम् ॥२७॥

मूर्धे परिणामात्परिणम विनाप्यस्य मुणवन्तो ॥

एकोत्तरमेगादि वर्धते अत्रानु उदयम् ॥२७॥

पुद्गलात्परिणमव्याख्यायां ॥२७॥

निद्वेगो निद्वेगो वदेन दत्तेन सति निनमं वा ॥

बहुधा दोषुण्यहिजो परानु उदयम् मुणवन्तो ॥२८॥

॥२८॥

स्निग्धतः स्निग्धेन नयेन स्वधेन सत्ये विदये वा ॥

बन्धाति द्विगुणाविद्य परमाणुर्द्वन्द्वमुणवन्तो ॥

तथा कति-

संज्ञाऽन्तःसाध्यं वादरसुदना य इति ते संज्ञा ॥

परिणामिदो बहुधा सुदधीभादीहि पादव्या ॥२९॥

संज्ञाऽन्तःसाध्यं वादरसुदनाश्च ते कति एकधाः ॥

परिणता बहुधाः पृथिव्यादिभिर्ज्ञातव्याः ॥

पुद्गलद्रव्यविभावपर्यायान्तररूपवति—

जो सल्ल अणाद्विद्वानो कारणरूपो इ कवञ्जरूपो वा ।
परमाणु पौग्वलाणं सो दम्बसहाव पञ्जाभो ॥ ३० ॥
य सल्ल अणाद्विद्वानः कारणरूपो इ कार्यरूपो वा ।
परमाणुः पुद्गलानां स इत्यवभावा पर्याय ॥

पुद्गलगुणविभावपर्यायान्तरनिदर्शयति—

रूपरसगंधप्राप्ता जे यथा तेषु अणुकदम्बेषु ।
ते चैव पौग्वलाणं सहावगुणपञ्जया जेया ॥ ३१ ॥
रूपरसगंधस्पर्शा ये सिधतास्तोत्रणुकदम्बेषु ।
ते चैव पुद्गलानां विभावगुणपर्याया जेया ॥

पुद्गलद्रव्यविभावपर्यायान्तररूपवति—

पुटवी बलं च छाया चतुरिदियविसयकम्मपरमाणु ।
अदभूलपूल पूतो मुहमं मुहमं च अदमुहमं ॥ ३२ ॥
पुषिबी बलं च छाया चतुरिदियविसयः कर्मपरमाणु ।
अतिष्णुणत्पूतः त्पूतः सूत्रमः सूत्रमधातिसूत्रम ॥
जे संसार्हं खंधा परिणमिआ दुअणुआदिसंभेदि ।
ते चैव दम्बविभावा ज्ञानं मुमं पौग्वलाणं च ॥ ३३ ॥
ये संसार्हदिसंभेदाः परिणमिता इणुकादिसंभेदाः ।
ते चैव दम्बविभावा ज्ञानं इत्वं पुद्गलानां च ॥

पुद्गलगुणविभावपर्यायान्तरनिदर्शयति—

रूपारय जे उगा जे दिहा इअणुकारोपमि ।
ये पुग्वलाण भविया विहावगुणपञ्जया सन्ने ३४

स्पाटिका ये उक्ता ये दृष्टा द्रव्यगुणादिस्तन्त्रे ।

ते पुट्टलानां भणित्वा विभावगुणपर्ययाः मूर्ध्ने ॥

धर्माधर्माकाशकालानां स्वभावद्रव्यगुणपर्ययानाह-
गदिष्टिदिवदृणगहृणा धन्माधन्मेसु गगनकालेषु ।

गुणसम्भावो पञ्जय दधियमहावो दु पुव्वुत्तो ॥३५॥

गतिस्थितिवर्तनावगाहनानि धर्माधर्मयोगगनकम्प्रयोः ।

गुणस्वभावः पर्ययो द्रव्यस्वभावस्तु पूर्वोक्तः ॥

इति पञ्चापाधिकारः ।

अथ द्रव्यस्य व्युत्पत्तिपूर्वकत्वेन लक्षणप्रथमाह-
दवदि दविस्तदि दविद् जं मन्मायेहि विविहपन्त्रा
तं षह जीवो षोग्गल धन्मा धन्मे च कालं च ॥३६॥
द्रवति द्रोध्यति द्रुतं यन्वभावविविधपर्याये ॥

तन्ममो जीवः पुट्टलं धर्मोऽधर्मश्च कालश्च ॥

प्रकारान्तरं द्रव्यलक्षणं आचष्टे -

निष्कान्ते तं मत्तं वदुदि उप्यायवयध्रुवत्तंदि ।

गुणपञ्चायमहार्यं अणादिभिर्दं गु तं ह्ये द्यं ॥३७॥

मिहोत्ते दमन्व वर्तते तयःद्रव्यध्रुवरी ।

गुणपर्यायस्वभावं अनादिभिर्द स्वयु तद्रवेद् द्रव्यम् ॥

मदद्रव्यमन्त्रवयवत्वा पर्यायमन्त्रिनाभावित्वं भेदोन्मद च शङ्क-

उक्ता एवमहार्यं तन्ना तदिदयदोमहार्यं गु ।

उक्ता निदयमहार्यं तन्ना दोएवकमम्भार्यं ॥ ३८ ॥

इत्युक्तं च विद्यते -

ए विनाशिनो न विदुः शत्रुं भयं वा य मन्त्रिनः
ए विदुः शत्रुं मन्त्रिनः शत्रुं वा शत्रुं शत्रुं शत्रुं
ए शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं
ए शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं

इत्युक्तं च विद्यते -
इत्युक्तं च विद्यते -

मनं इह अहं वागदं किं तस्मिन् पुनो विनाशिनो
अहं व अमनं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं शत्रुं
मादं एहि नश्यति एहि नश्यति एहि नश्यति
अथवा अमन्त्रिनो हि इत्युक्तं च विद्यते -

ननु वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं
अथवा वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं
ता मा पंचह भिष्णा खंधानं वासना गिर्यं ॥३३॥
अथवा वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं
तर्हि सा पंचभ्यो निन्ना एकन्धानां वासना नित्या ॥

अथवा वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं वागदं
प्रथमिज्ञा पुनर्दानकलं भोगोऽर्जितैतन्नाम् ।
प्रथमिज्ञा पुनर्दानकलं भोगोऽर्जितैतन्नाम् ॥३३॥ इति ।

नित्यपक्षे दूषणमाह -
ए गिर्यमेव मष्णादि तस्मिन् किरिया इ अत्यकारिणः
इ तं वदथु मपियं जं रहियं अत्यकारियाहि ॥३३॥
नित्यमेव मन्वते तस्य न किरिया अत्यकारित्वम् ।

न हि तद्वस्तु भङ्गित यद्वहित (१) अर्धक्रियाभि ॥ ४६ ॥

दृष्यमान्तरमाह

गिच्छे द्रव्ये गमणद्वारं पुह किह सुद्धामुद्धा क्रिया ।
अह उच्यारा क्रिया कह उच्यारा हवे गिच्छे ॥ ४७ ॥

नित्ये द्रव्ये गमन स्थान पुन कथ शुभाशुभा क्रिया ।

अथ उपचाराक्रिया कथमुपचारो भवेन्नित्ये ॥

भेदपथे दृष्यमाह—

गिच्छं गुणगुणिभये द्रव्याभावे (२) अणंतियं अहवा ।

अणयन्था समवाए किह एयन्तं प्रमाहंदि ॥ ४८ ॥

नित्य गुणगुणिभेदे द्रव्याभावोऽनतिकोऽथवा ।

अनयन्था समवाये कथमेकत्र प्रमाधयति ॥

१ विगतता सत्ता परमात्तदिसत्त्व असद्विषयं 'णयि मन्व' मन्व
सम्भूत 'नायि सर्व' । इति ३२ समवायपाठः ।

२ क्षणिकवादिनो हि स्वयं, वेदना, विज्ञान, मस्कारः, सङ्घ इति
पञ्च रूपा मन्वन्ते ।

३ यदि सर्वथा गुणगुणिभेदस्तर्हि सर्वगुणेभ्यो इत्यनित्य
नहि किञ्चिद् द्रव्यमिति द्रव्याभावः । गुणा अति द्रव्ये विहाय न
निगधाराभित्युक्ति इति गुणाभावः । समवायात्तदोर्भेद समवा-
योऽपि ताभ्या भिमोऽभिन्नो वा, भिसभेकथ तयोरेव न स्पेयमिति ।
समवायात्तरादिति चेत् मोऽपि भिमोऽभिन्नो वेत्ततनवस्था भेदप-
थेऽनकोद्वेषा । सत्यां तस्यां कथमेकत्र समवायः प्रमाधयन् ।

अभेदात् कृष्णमाह-

जाग्रादोऽपि य भिन्नं मां वि य मुक्तिरागिरेदं
एतद् न तस्मै परमं मुर्खादो जे न इद भिदं ॥ ४४ ॥
ज्ञान-वशी य भिन्न तेजसो य मुक्तिर्विश (१) एत-
नदि गण य परम मुक्तिो वनेद सिद्धम् ॥

नहि चिन्मयस्ति स्वप्नो दृग्गमाह-

समं जो एतद् मग्नाद् पशन्मविरोदियं हि तस्मन्
तो जेयं एदि जाणं न समयं निश्चयं जग्रा ॥ ४५ ॥
सन्ध यो न हि मग्नेन प्रत्यक्षविरोधितो हि तस्मन् ।
नो जेयं नहि ज्ञान न मगदो निश्चयो यस्मान् ॥

मयं सर्वत्र विद्यते इति सर्वगत्यपणे दृग्गमाह-

मय्य जह् सर्वत्रयं (२) विज्जति इह जात्य कोऽपि यथा-
सेवावधिज्जकज्जे न कारणं किं पि कस्मेष ॥ ४६ ॥

१ ये हि युक्त्या गुणगुण्णादिक भिन्नमनुभवोऽपि सौख्यं
मभेदः प्रतिपादित इति वर्णयन्ति तेषा सूत्रं मुक्तिवर्जितं इत्य-
पदिह युक्तिः प्रत्यक्षादिप्रमाणेन सिद्धं तत्र परमत्वमिति सिद्धं ।

२ सर्वं यदि सर्वत्र विद्यते सदा न कोऽपि दरिद्रः स्यात्
रिद्धेऽपि धनादिषस्तूना सद्भावात् । एवंच सर्वेऽपि यथा-
व्यर्थं सेवावाणिग्यादि कार्यं कुर्वन्ति । इदानीं यदि सर्वं सर्वत्र
द्यते, तन्नैरर्थक्यं स्यात् । तथैव हि कार्योत्पादाय
सुधेरिदानीं तदपि न स्यात् सर्वस्य सर्वत्र विद्यमानत्वात् । न हि
चित्कार्यं किञ्चिक्कारणमिति ।

णैर्य ष्याणं उहयं निरोद्धियं तं च जाणणमभयं ।

अहयाविरभायगयं सन्वन्थ विजाणये मग्वा ॥ ५२ ॥

सर्वं यदि सर्वगतं विद्यते इहासित कोऽपि न दग्डी ।

शेषावाणिम्यकार्यं न कारण किमपि फल्यैव ॥

श्रेय ज्ञानमुभय निरोद्धिर्न तच्च ज्ञानुमहावयम् ।

अथवाविभायगत मयंत्र विजानांश्च मयंत्र ॥

सर्वमेकमद्वायभाषात्मिकमिति वक्ष्ये दृष्यताम् —

अहं मयं यममयं तो किह विविहासहायगं दयं ।

एषविणासे पागद गुहागुहं सन्वलायाणं ॥५३॥

यदि सर्वं ब्रह्ममय तर्हि कथं विविधत्वभावक द्रव्यम् ।

एकविनासे नदेत् शुभाशुभ सर्वलोकानाम् ॥

अविद्यावशादेव भेदस्यवाया इति चैतदनुरा दृषयति-

यममहायाप्रभिष्णा अहं तु अविज्ज्ञा विमप्यदं कठ वा ।

ता तं तस्म महायं अहं पुष्पुत्तं पलायज्जा ॥५४॥

ब्रह्मत्वभावाऽभिन्ना यदि ह्यपि विवक्ष्यते कथं वा ।

तर्हि वा तस्य स्वभावोऽयं पूर्यते विदोक्तय ॥

यदि सर्वेषु चोपात्तर्हि के वाग्वदा इत्यत्र आह-

वत्पू इवेदं तत्पर्यं वप्यतेना पुन इवेति मयविज्ज्ञा ।

मियताविरहता वत्पू मर्णति इयता तु लो ज्ञाना ॥५५॥

वत्पू मर्णताव वाग्वदाः पुनः, अविनि भवतीत्यः ।

स्वप्नापेशा वाग्वदा भवन्ति इत्ये दि को वयम् ५ ॥



एका अयुतस्वभावे अनेकरूपा हि विविधभावस्या ।

भिन्ना हि वचनभेदे नहि सा भिन्ना अमेदान् ॥

भव्यगुणादो [१] भव्या तच्चिवरीण्ण ह्येति विवरीया
सम्भावेण सहाया [२] सामण्यंसहायदो संख्ये ॥६३॥

भव्यगुणद्रव्यान्तद्विपरीतेन भवन्ति विपरीताः ।

स्वभावेन स्वभावा मामान्यस्वभावतः सर्वे ॥

अणुहवभावो चेषणमचेयणं होदि तस्म विवरीयं ।

रूपादिपिण्ड मुक्तं विवरीये ताण विवरीयं ॥६४॥

अनुभवभाषक्षेतनमचेतन भवन्ति तस्य विपरीतम् ।

रूपादिपिण्डो मुक्तं विपरीते तेषां विपरीतम् ॥

येन पण्णाम एकाणेकं च द्रव्यपञ्जयदो ।

महजादो रूवंतरगहणं जो सो हू विवरीयो ॥६५॥

क्षेप प्रदेष्टानाम एकानेकं च द्रव्यपर्ययतः ।

महजाद्रपातरग्रहण यस्म हि विभावः ॥

कम्मवमयाद् सुदो मिम्मो पुण होइ इयरजो भावो ।

इं विय द्रव्यमहायं उपयारं तं पि वरहारा ॥ ६६ ॥

कर्मवमयाद् सुदो मिम्मो पुनमंथरि इतरजो भावः ।

इं विय च द्रव्यमहायं उपयारं सोरि उपवहारात् ॥

१ भवितुं परावर्तितुं कोट्यन्तं तु भव्यत्वेन विहितव्याप्तयः ।

२ अद्विपरीतेना भव्या ।

३ अतएव इत्येव वदन्तः कौटिल्ये परमावस्थाः सवः ।

वभावानां यथा निर्धक्य सार्धक्य वा तथा दर्शयति-
निरवेकमे एयन्ते मंकरादीदि इमिया भावा ।
नो निजकार्ये अरिहा विचरीण ने वि म्वदु अग्निः॥६७

निरपेक्ष एवाते संकरादिभिर्गणिता भावा ।

नो निजकार्येऽर्हा विपरीते तऽपि स्वस्वर्हा ॥

गुणपर्याययो स्वभावत्वमनुकार्यभावानामन्तर्भाव

च दर्शयति—

गुणपञ्जायमहाया दम्बसमुपगया हृ ते जज्ञा ।

पिच्छद अंतरमावं अण्णगुणाईण भावाणं ॥ ६८ ॥

गुणपर्यायस्वभावा दम्बत्वमुपगता हि ते यम्मात् ।

इक्षत्वमन्तर्भाव अन्यगुणादीनां भावानाम् ॥

प्रत्येकद्रव्यस्वभावसंख्यामाह—

इगरीमं तु महाया जीपे तद जाण पोग्गले णयटो ।

इयराणं मंमवदो णायव्वा णाणयनेहिं ॥ ६९ ॥

एकविंशतिस्तु स्वभावा जीवे तथा जानीहि पुद्गले नपत ।

इगरीमं सम्भवतो ज्ञातव्या ज्ञानवद्भिः ॥

सदेवाह प्रत्येक—

इगरीमं तु महाया दोण्हं [१] तिण्हं [२] तु सोडमा भणिया ।

पंचदमा पुण कोले दम्बसहावा [३] य णायव्वा ॥७०॥

१ जीवपुद्गलयो. । २ धर्माधर्माकारानाम् । (१) तथा चोक्तं—एष

विंशतिभावा स्युर्जीवपुद्गलयोर्नता. । धर्मादीनां वेदना स्यु कोले

पंचदस स्मृताः ॥१॥ धर्मादित्रयाणां चेतनत्वेनेकप्रदेशत्वं विना-

वस्वभावात्वं मूर्तस्वभावत्वमनुकार्यस्वभावमपनयेत्. कातरप दददं-

स्वभावमपनयेत् ।

एकविंशतिभ्यु स्वभाया द्वयोस्त्रयाणां तु षोडश भगिदा ।

पचदश पुनः कान्ति द्रव्यस्वभावाश्च ज्ञातव्याः ॥

स्वभावाद्यभाविनाः म्यरूपं प्रमाणनयविषयं व्यापष्टे—

सर्वधैक्यानेन मद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था सद्गुरादिशेषस्य

तथा मद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगत् [१] । निव्यरदैकस्वरूपस्य

एकस्वरस्याधिक्रियाकारित्वाभावः, अर्धक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्य

भाव । अनिन्यपक्षेऽपि निरन्वयत्वाद्दर्धक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्य

भाव । एकस्वस्वेक्यानेन विशेषाभावः सर्वधैकरूपत्वात् । विशेषाभा

(२) नामान्यस्य स्वभावा । अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधार

त्वात् । अनेकपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वाद्दर्धक्रियाकार

ित्वाभावः । अर्धक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अनेकप

क्षेऽपि सर्वधैकरूपत्वाद्दर्धक्रियाकारित्वाभावः । अर्धक्रियाकारित्वाभावे

द्रव्यस्याप्यभावः । भव्यधैक्यानेन परपरिणत्या मकरादि (३) शेषस्य

भाव । अभावात्स्यापि तथा शून्यताप्रसंगः स्वरूपेणाप्यभेदनात्

स्वभावस्याप्यधिक्यानेन मसाराभावः । विभावपक्षेऽपि तथा शेषस्य

स्याप्यभावः । धित्त्वमेवेत्युक्तं सर्वेषां शुद्धज्ञानधैतव्यावगिर्भे

१ ' सर्वधैक्यानेन ' इत्यत आरभ्य ' शून्यताप्रसंगः ' इति

तान्पाठं य पुस्तके नास्ति ।

२ निव्यरदैक्ये हि सामान्य भवेत्प्रज्ञाविषयत्वम् । सामान्यरहितत्वस्य

विशेषात्प्रसंग इति ।

३ मकरादिव्यतिरिक्तानिर्धैक्यविकारत्वात् न वक्ष्यामः शब्दात्प्रतिपक्षमात्रेण

सर्वे २५ ।

उहयं जुगवपमाणं गहइ णओ गउणमु कसुभावेन ॥७१॥

स्वस्तिवादिस्वभावाः सर्वे स्वभाविनः स्वस्वभावाः ।

उभयं युगवप्रमाणं गृह्णाति नयो मौणमुह्यभावेन ॥

स्याच्छब्दरहितत्वेन दोषमाह--

मियमहेण विणा इह विसयं दोहणं वि जे विगिहणंति ।

मोत्तूण अमियभोजं विसभोजं ते विकुर्वन्ति ॥ ७२ ॥

स्याच्छब्देन विनेह विययं द्वयोरपि योपि गृह्णाति ।

मुक्त्वामृतमोक्षं वियमोक्षं तेऽपि कुर्वन्ति ॥

स्याच्छब्दरहितत्वे गुणमाह--

मियमहेण य पुहा वेन्ति णयत्था इ वत्तुमम्भारे ।

पन्धु जुगीमिहं जुची पुण णयपमाणादो ॥७३॥

स्याच्छब्देन च शृष्टा भुवन्ति नयार्था हि वस्तुमभयन ।

वस्तु वृत्तिमिह मुक्तिः पुनरेपप्रमापत ॥

इयमंहरमाह--

इति पुच्युत्ता पम्मा मियमावेकत्वा ण गेहणए ओ इ ।

मो इह मिच्छाददी णायथ्यो पययणे मणिओ ॥७४॥

इति पूर्वकाल्यमं-स्यात्प्रमापेक्षान् गृह्णायाद् गो इति ।

न इह विध्यार्थे इत्यत्र प्रवचने मणित ॥

कर्मत्रयार्थवत्प्रमापविकल्पनात्तानां संख्या इत्यत्र च ॥

प्रागिति कर्म्ये त्रिगुणा इत्यहो माह्ये इत्यर पणिनादी ।

माया जीवे मनिपा वयेण मथेशि णायथ्या ५७५॥

व व तेऽपि कर्मिणः त्रिगुणः इह इत्यत्र इत्यत्र इत्यत्र ॥

मन्त्रस्यैवकारणमाह-

त्रद जीवणमशादे जीवे दृश्यं तदेव कर्मणाम् ।
न हि य दृश्यं भावे ज्ञान मनोगिम्भ भविष्यते ॥ ८१ ॥
तदा जीवणमशादि जीवे दृश्यमग्रेव कर्मणाम् ॥

मोक्षी च द्रव्य भावः कार मयोऽनित्यमस्यम् ॥

प्रकृत्यापलाप्रकृतीनां भेद एतदेतन्मूला मृषयति-
मूलान्तरात् इतरा भेदा पयदीण ह्येति उदयार्ण ।
हेतुं दो पूज पुढा हेतु चकारि नायव्या ॥ ८१ ॥

मूलाकाराभ्येते भेदाः प्रकृतीनां भवन्मुनयोः ।

हेतु दो पुन पृष्टा हेतवध शगे ह्यव्या ॥

तानेव वन्द्येतेनाह-

मिच्छता अविरमणं कृमाय जोगा य जीवमारा इ
दृश्यं मिच्छताह य योगलदृष्याण आवरणा ॥ ८२ ॥

मिथ्यात्वमविरमण कयापो योगाध जीवभावा हि ।

द्रव्यं मिथ्यात्वादि च पुद्गलद्रव्याणाभावरणानि ॥

भावद्रव्ययोन्योन्यं कार्यकारणमायमाह-

भावो द्रव्यनिमित्तं द्रव्यं पि य भावकारणं मणिर्यं ।
अणोष्णं वज्रंता कुणंति पुढी इ कर्मणाम् ॥ ८३ ॥

भावो द्रव्यनिमित्त द्रव्यमपि च भावकारणं मणिर्यम् ॥

अन्योन्यं वज्रन्तः कुर्वन्ति पुष्टि हि कर्मणाम् ॥

मूलप्रकृतीनां नामान्याह-

दंसणणाणावरणं वेदामोहं तु आड णामं च ।

गोदंतराय मूला पयदी जीवाण नायव्या ॥ ८४ ॥

दशमज्ञानावरणे वेदो मोक्षस्य आयुर्नाम च ।

शेषनन्तरायो मूलप्रकृतयो जीवानां इत्यस्या ॥

उत्तरपक्षानां यथाक्रम मस्यामाह -

एव एव दो अर्द्धा चउ तेणउदी तहेव दो पंच ।

एदे उत्तरमेया एयाणं उत्तरोत्तरा इति ॥ ८५ ॥

नव एव ही अष्टाविंशतिभ्यारखिनकतिस्त्वेष ही एव ।

एते उत्तरभेदा एतामां उत्तरोत्तरा भवन्ति ॥

एता. सामान्येन शुभाशुभभेदाभिमा जीवानां मुख्यदु.स्वकल्पा
भवेतीत्याह -

अमुहमुदार्णं भेदा भव्वा वि य ताउ हौति पयडीओ ।

काऊण पञ्जयटिदी मुहदुखं फलति जीवाणं ॥८६॥

अशुभशुभानां भेदा सर्वा अपि च ता भवन्ति प्रकृतय ।

कृदा पर्यायस्थिति मुखदु स्व फलन्ति जीवानाम् ॥

पर्यायस्थितिकारणमाह

मुग्गरणारयतिरिआ पयडीओ णामकम्मणिव्वसा ।

जहण्णोकस्ममग्गिमआउवमेणंनिया हु ठिदी ॥८७॥

मुग्गरणारकतिरश्चयः प्रकृतयो नामकर्मनिर्मुक्ता ।

जहण्णोकृष्टमध्यमायुर्वेदेनाम्निका हि स्थितिः ॥

चतुर्गतिर्जीवानां ऊर्ध्वमध्यमोत्कृष्टासु.प्रमाणं कथयति

तद् तावन्मनुष्याणाम्-

अन्तोमुहुत्त अवरा वरा हु मणुआण होइ पल्लतिपं ।

मग्गिम अवरा घट्टी जाव वरं समयपरीहीणम् ॥८८॥

अन्तमुहूर्तपररा परा हि मनुजानां भवति पत्यत्रयम् ।

पंचावस्था देहे कर्मतो भवन्ति सफलजीवानाम् ।

उपाधिर्वाङ्मन्त्र दीवर्न वृद्ध्यं भवति तथा मरणम् ॥

यमुर्विधदुःखानां नाम लक्षणानि षाड—

महजं शुभाद्जादं णयमित्तं भादथादमादीर्हि ।

रोगादिश्चा य देहज अणित्त्वजोये तु माणसियं ॥९३॥

महजं क्षुदादिजातं नैमित्तिकं शीतवातादिभि ।

रोगादिकाश्च देहजं अनित्ययोगे तु मानसिकम् ॥

विभावग्वभावफलमाह -

विम्बावादो बंधो मोक्षो मन्भावभावणालीणो ।

तं तु पराणं णत्वा पच्छा आराहो होई ॥९४॥

विभावद्वन्द्वो मोक्ष सद्भावभावना लीन ।

त खड्ग नराणां श्लाघा पश्चादाराधको भवति ॥

एवमनेकान्तं समर्प्यं तत्फलं च दर्शयति—

एवं सियपरिणामी वृद्धादि मुंचेदि दुविद्देदीर्हि ।

न विरुद्धादि बंधाई जह एयंते विरुद्धेई ॥९५॥

एव स्यात्परिणामी वृद्धादि मुंचति द्विविधदेतुभि ॥

न विरुध्यते बंधादिर्धैकान्ते विरुध्यते ॥

इति द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥

इदानीं विमेषगुणानां स्वामित्त्वमनर्गनार्यनाह
नथ गाथाद्वयेनाधिकार पातनिका--

सामावृता जं गुणपञ्चदश्याण लक्षणं संज्ञा ।
णय विमयदंमण्ये ते चैव विमेषदां भगिनो ॥१३॥

सानान्योका ये गुणपर्यदध्यागां लक्षण संज्ञा ।
नयविमयदंमनार्थं तार्थैव विशेषो भगिध्वे ॥

गयणं पान्गुत्र जीवा धम्माधम्मं तु काल दर्नः ।
भणिवच्चा अणुकमयो जहद्विया गयणगन्धेमु ॥१४॥

गगन पुटल जीवा धर्माधर्मो तुलु कालः इत्य च ।
भणितव्यानि अनुक्रमशो यथास्थितानि गगनगन्धेमु ॥

गगनद्वयस्य तावद्विशंपलक्षणं भेदं चाह--
चयणरोहियमसुगं अवगाहणलक्षणं च मव्वगयं

लायान्नायविभेयं तं णहदव्वं जिणुदिडं ॥ ९८ ॥
चैवनारहितममूर्ते अवगाहनलक्षणं च सर्वगतम् ।

लोकालोकादिभेद तन्मभोदव्य जिनेदिष्टम् ॥
लोकालोकाद्योर्लक्षणमाह--

वेहि पुगलोहे य धम्माधम्मेहि जं च कालेहि
जं तं कायं ससमलायं इवे णन्तम् ॥ ९९ ॥

पुटलं ध धर्माधर्मं यथ कालैः ।
त स लोक. शेषोऽल्लोको भवेदनन्तः ॥

अनुपगिणः स्वरूपं निरूप्य पुटलमम्कयमाह--
णाश्मणिहणं अकिट्टिमं निविहभेयसंठारं ।

परिणामिजीवस्वरूपमाह-

सो स्रु जीवसदावो नो जणिओ नो स्वयेण संबुदो ।
 कम्मणो सो जीवो भणिओ इह परमभावेण ॥११६॥
 ए स्रु जीवस्वभावो नो जनितो नो क्षयेण संबुत ।
 कर्मणा स जीवो भणित इह परमभावेण ॥

अचेतन्यवादिनामाहाहुर चेतन्य स्वामित्वं याह-

आदा चेदा भणिओ सा इह फलकज्जणानभेदा ह ।
 तिद्गं वि य संसारी णाणे [१]स्रु णाणदेहा ह ११७
 भात्ता चेतयिता भणित सा इह फलकार्यज्ञानभेदा हि ।
 तिसृणामपि संसारी ज्ञाने न्नु ज्ञानदेहा हि ॥

चेतनास्वामित्वे विशेषमाह-

यावर फलेसु चेदा एस उहयाणं पि होति णायव्वा ।
 अहव असुद्धे णाणे सिदा सुद्धेसु णाणेषु ॥ ११ ॥
 स्थावरः फलेषु चेतयिता व्रसा उमयोरपि भवंति ज्ञातव्वा ।
 अधवा असुद्धे ज्ञाने सिद्धा सुद्धेषु ज्ञानेषु ॥

निरूपयोगिकटासमुच्छिन्न जीवस्योपयोगमाह

उवओगमओ जीवो उवओगो णाणदंमणे भणिओ ॥
 णाणं अहपयारं चउमेयं दंसणं णेयं ॥ ११९ ॥
 उपयोगमयो जीव उवओगो ज्ञानदर्शने भणित ।
 ज्ञानमष्टप्रकारं चतुर्भेदं दर्शने शेषम् ॥

१ ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतनेति चेतना त्रिविधा
 तर्कितार्था तिसृणामपि स्वामी संसारी । ज्ञानचेतनायां तु ज्ञानदेहा
 केवलज्ञानसरीराः स्वामिनो भवंति ।

मूर्तिकांतनिषेधार्थं न्याद्मूर्तत्वमाह--

स्वस्सर्गंधफान्ना सद्वियप्पा वि णत्थि जीवस्स ।
पो मंठारं किरिया तेण अमुत्तो ह्वे जीवो ॥ १२० ॥
रूपरसगंधस्पर्शा शब्दचिकन्ता अपि नं मंति जीवस्सा ।
नो मग्धानं क्रिया तेनामूर्तो भवेऽजीवः ॥

अमूर्तत्वेऽपि तथा न्यान्मूर्तत्वमाह--

जी हू अमुत्तो भणितो जीवमहावो जिणेहि परमत्थो ।
उवयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिमंजुत्तो ॥ १२१ ॥
यथामूर्तो भणितो जीवस्वभावो जिनः परमार्थः ।
उपचरितस्वभावत् अचेतनो मूर्तिसयुक्तः ॥

स्वापकत्वमणुमात्रत्वमपाम्थ देहमात्रत्वमाह--

गुरुलघुदेहपमाणो अत्ता चत्ताहु सत्ताममुघायं ।
व्यवहारा णिच्छयदो अमंखदेयो हू सो णेओ ॥ १२२ ॥
गुरुलघुदेहप्रमाण अत्ता त्यक्त्वा हि सत्तासमुदात्तात् ।
व्यवहारान्निश्चयनोऽमरूपदेशो हि स ज्ञेयः ॥

प्रकरणवशादेहस्य भेदमाह--

देहा यं हुंति दुग्धिहा यावरतमभेददो यं विण्णेया ।
यावर पंचपयाग वादरमुहुमा वि च्छद्द तमा न्ह य ।
देहाथ भवन्ति द्विविधा स्थावरत्रयभेदश्च भिन्नाः ।
स्थावरा पंचप्रकारा वादरसूक्ष्मा अपि चत्वारस्त्रमास्तथा च ॥
षोडशमांशवर्षं प्रति भोक्तृत्वात्माह--
देहशुद्धो मां भुत्ता भुत्ता मां चैव होइ इट कर्त्ता ।

कथा पुण कम्मजुदो जीजां गंमाग्गिओ मणिओ ॥ १२४
देदुगः म भोता भोता मवव भवति इह कथा ।

कथा पुन कंस्युतो जीव सत्कारिको भवेत् ॥

उक्तं च कर्मणो नयमस्वध्यान्व गंधिमादि व गत

कर्मं द्विविधविषयं भावमहावं च दृश्यमवभाव ।

भावे सो णिच्छयदो कथा वरहादो दृश्ये ॥ १२५ ॥

बंधो अणाग्निहणो संताणादो जिमाह जां धणिओ ।

सो चैव माग्निहणो जाण तुः मलयबंधेग ॥ १२६ ॥

कर्मं द्विविधविहृत् भावस्वयन र च दृश्यमवभाव ।

भावे म निधयत कथा वरहादो दृश्ये ॥

बभोऽनाग्निघन सन्तानाग्निजनेदो भवति ।

म चैव सादिनिधनो जानीहि च ममपचयेन ॥

म कर्मचक्रश्चति किं तद्भवति केन हेतुना प्रदणामित्याह -

कारणदो इह भव्ये णामइ बंधो विषयण कम्मैव ।

ण हु तं अभविगमरो जजा पयटी ण मुंचेइ ॥ १२७ ॥

कारणत इह नव्ये नश्यति बन्धो विजानीहि कथय ।

न हि स अभव्यसत्त्वे परमा-प्रकृतिर्न मुच्यते ॥

बंधो जे पुब्बुत्ता हवति कम्माणि जीवभावेण ।

लदा पुण ठिदिकालं गलंति ते णियणलं दत्ता ॥ १२८ ॥

रुन्धा ये पूर्वोक्ता भवन्ति कर्माणि जीवभावेन ।

लदा पुन स्थितिकालं गलन्ति तानि निजकलं दत्ता ॥

बन्धुः शारिङ्गमुत्तरीय बन्धुमोक्षयोगेणं मुष्णं विविधं पद-

मोक्षाद् दृष्ट्वा ज्ञेया तद्वया मोक्षं कृणुत रायमादीदि ।

एवं बन्धो जीवे वागावरणादिकर्मैर्हि ॥१२०॥

मिच्छेत् मिच्छाभाशो मम्मै सम्मा वि द्वां जीवन् ।

बन्धु निमिशमंते मरागपरिणामवीपरायात् ॥१२१॥

मोक्षा हि भवति यावत्तवत्स करोति रागादिभिः ।

एव बन्धो जीवे ज्ञानावरणारिकर्मभिः ॥

मिच्छाये मिष्याभाशः सम्भयि सम्भयि भवति जीवान्

बन्धु निमित्तमात्रं मरागपरिणामवीतरागाये [१] ॥

बीजाङ्कुरन्यायेन कर्मणः कश्चमुपदिशति गामाप्रयेगेति-

कर्मं कारणभूदं देहं कश्चं तु अत्र देहादौ ।

अस्त्राद् विसयगर्गं रागादि निबन्धदे तपि ॥१२२॥

कर्म कारणभूत देहः कार्यं स्वस्वतो देहतः ॥

भक्षालु विषयरागः रागादि निबन्धाणि तदपि ॥

तेन चउग्गद्देहं गेद्गद् पंचप्ययारियं जीवो ।

एयंतं गिद्गंतो पुणो पुणो बधदे कम्मं ॥१२३॥

तेन चतुर्गतिदेहं गृह्णानि पंचप्रकारकं जीवः ।

एकास्तं गृह्णन्पुनः पुनर्वज्जालि कर्म ॥

इह एव मिच्छदिद्दी कम्मं संजणद् कम्मभावेर्हि ।

जद् बीयङ्कुर णयं त तं अवरोप्परं तद् व ॥१२४॥

इहेव मिष्यादृष्टिः कर्म संजनयति कर्मभावेः ॥



उक्तं चान्यत्र ग्रन्थे—

एयम्नि पएसे खल्ल इयरपएसा य पंच गिदिहः ।

ताणं कारणकज्जे उहय सम्भवेण ण,यव्वं ॥

एकस्मिन्प्रदेशे खल्ल इतरप्रदेशाश्च पंच निर्दिष्टाः ।

तेषां कारणकार्यं उभयं स्वरूपेण ज्ञातव्यम् ॥

पुग्गलमज्झरथोर्यं कालाणु मोक्खकारणं होई ।

समजो अरूवि जह्मा पुग्गलमुत्तो ण मोक्खो हु ॥१३५॥

पुद्गलमध्यस्थो हि कालः,णुर्भोक्षकरणं भवति ।

समयोऽरूपी यस्मात्पुद्गलमुत्तो न मोक्ष. खल्ल ॥

व्यवहारकालं निरूपयति—

ममयावलि उस्सासो धोवो लव णालिया मुत्त दिव्वं

पक्खं च मास वरिसं जाण इमं सयल धवहारं ॥१३६॥

नमय आवलि उच्छास. स्तोको लथो नाळिका मुहूर्त. ति

पश्चात् मानो वर्षं जानीहीमं सकलं व्यवहारम् ॥

नमयकालप्रदेशनिर्दिष्टार्थं आह तत्र तावदेकममयाय

प्रमाणमाह—

णहएयपएमत्थो परमाणु मंदगइपवटंतेो ।

पीपमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालं ॥१३७॥

नभद्रकप्रदेशस्थ. परमाणुमंदगधिपवर्तमानः ।

द्वितीयमनतरक्षेत्रं यावन्तिकं यान्ति ता समयकालम् ॥

प्रदेशस्य प्रमाणमाह --

शेषियमेत्तं गेत्तं अणुणा रुद्धं गु णयणद्वयस्स ।

चतुर्दशसूक्तस्यो लोकः सप्तानि श्रीमि त्रिचवारिह
 विगयसिरो कटिहृत्यो ताटियजंधो युवाणरो
 वेणायारेण ठिओ तिविहो लोको मुपेयव्वा ॥
 विगतशिरः कटिहस्तस्तादितजंधो युवानर उर्ध्वः ।
 नेनाकारेण स्थितस्त्रिविधो लोको मन्तव्यः ॥

द्रव्यधेत्रकालमावैश्च स्वभावा द्रष्टव्या -

द्रव्ये क्षेत्रे काले मावे भावा फुडं च लोएउवा
 एवं हि थोवपहुगा णायव्वा एण मग्गेण ॥१४५
 द्रव्ये क्षेत्रे काले मावे भावाः स्फुटं च लोदनीयाः ।
 एव हि स्लोकबहुका ज्ञातव्या अनेन मार्गेण ॥

इति श्री नवचक्राग्नि धंये द्रव्याधिकारः समाप्तः ।

मर्षेषामन्वित्वं कायत्वं पंचानां प्रदेशसंख्यां चाह-
 सव्येभि अतिथेत् गियणियगुणपञ्चपहि संतुर्त्तं ।
 पंचैव अतिथिकाया उवइहा पदूपदेमादो ॥ १४८
 मर्षेषामन्वित्वं निजनिजगुणपर्यथैः संयुक्तम् ।
 पक्षेनाम्निकाया उपदिष्टा बहुप्रदेशतः ॥

प्रत्येकं प्रदेशप्रमाणमाह--

जीवे धम्माधम्मे द्रुति पदेसा हु संसपग्निहीणा ।
 गपणं यंत्राणता निविहा पुण पोग्गले नेया ॥ १४९
 जीवे धर्माधर्मदोमंरति प्रदेशा हि सख्यापरिदीणाः ।
 गगनेऽनतानंतास्त्रिभिधा पुनः पुच्छे ईयाः ॥

इति पञ्चमिन्विकायाः ।

अप्यवस्था मृगा पुगलमणी नरादिहा जया ।
अण्णोष्णं मिहृता संभो मत्तु हां गिदाह ॥ १५१ ॥
अप्यवस्था मृगा पुगलमणीनरादिहा जया ।
अप्योष्णं मिहृतो वध मत्तु भवति म्नितादि ॥

उक्त वाच्यम्भन्वन्व,

कम्मव्यवस्थापणं अण्णोष्णपणमज कमायादो ।
अथा चतुर्विधो मत्तु छिदिपयडिपदेमअणुमागा ॥
अथा मत्तुदेगाना अप्योष्णप्रवेशन कयायत् ।
अथचतुर्विध. मत्तु सिधनिप्रवृत्तिप्रदेशे नुमागात् ॥ १५१ ॥

एवं चतुर्विधबन्धन्य कारणमाह.

जोगा पयडिपदेमा छिदिअणुमागा कमायादो हांति ।
एवं बंधमरूपं णायव्यं जिणवरे मणियं ॥ १५२ ॥
योग प्रवृत्तिप्रदेशो म्भिन्यनुमागो कयायतो भवतः ।
एव बन्धनरूपं ज्ञातव्यं जिनवरंभणितम् ॥

सधरन्धरूपं निरूपयति.

रुंधिय छिदमहस्मे जलजाणे जह जलं तु नासवदि ।
मिच्छताइअभावे तह जीवे संवरो होई ॥ १५३ ॥
रुंदे छिदसहस्त्रे जलयाने यथा जलं तु नासवति ।
मिथ्यात्वाद्यभावे तथा जीवे संवरो भवति ॥

निर्जराया लक्षण भेदो चाह.

निरवद्वकम्मणिवहं जीवपदेसा हु जं च परिगलह ।

शुभोदः शुभमोत्रं शुभनाम शुभापुंसैर्युज्यम् ।

तद्विगीतं पापं अर्ज्नाहि त्वं इत्यभावाभ्याम् ॥

अहवा कारणभूदा तैमि च वयव्यपाद् इह मणिका ।

ते मलु पुष्पां पावे जाण इमं पवयणे मणियं ॥१६२॥

अथवा कारणभूताम्बेशां च व्रताव्रतादि इह मणितम् ।

तस्मिन् पुष्पं पापं जानाहि इदं प्रवचने मणितम् ॥

अजीव पुष्पपावे अमुदजीवे तहामवे बंधे ।

सामी मिच्छादिही सम्मादिही ह्वादि मेसे ॥ १६३ ॥

अर्जवे पुष्पपापं अमुदजीवे तथास्त्रवे बन्धे ।

स्वामी मियाद्यष्टिः सम्यग्दृष्टिर्भवति शेषे ॥

मम्यभूतस्य विषयिणः फलं दर्शयति.

सामी सम्मादिही त्रिय संवरण निज्जरा मोक्खो ॥

मुद्धो चेषणरूवो तह जाण सुणाणपच्चवत्तं ॥१६४॥

स्वामी सम्यग्दृष्टिः जीवे संवरणे निर्जरायां मोक्षे ।

शुद्धधेनुरूपस्तथा जानीहि मुद्धानप्रत्यक्षः ॥

शच्छा दध्वसहावं जो ५, इहणगुणमंडिओ जाणी ।

चारिचारयणपुष्पो पच्छा सो पिब्वुदि लई ॥१६५॥

इहवा दध्वस्वभाव यः यद्दानगुणमंडितो ज्ञानी ।

चारित्र्यरूपः पश्चात्स निर्देति तमते ॥

इति पदार्थाविचारः १

वीर्यवानिने नमस्कृत्य युक्तिर्याग्यानापन्नाह धीरमिति -

वीरं विमलविरक्तं विमलमलं विमलप्राणमंजुषं ।

पुनर्विदि वीरजिनिदे प्रमाणयलवरणं वान्ते ॥१६३॥

वीर विमलविरक्तः दिगन्तव्यः विमलज्ञानसयुक्तः ।

प्रमाण्य वीरजिनेन्द्र प्रमाणनयत्पुत्रः वन्दे ॥

आगमादेव पर्यायि किं युक्तिर्याग्यानापन्नाह न प यात्

जमु पाहु तिवग्गफर्णं नमु ण तिवग्गम्य माहणं होइ ।

वग्गविपं जइ इच्छह ना तिवग्गं मुणह पटमं ॥१६७॥

एस नहि त्रिवर्गकरण मय्य न त्रिवर्गम्य माथन भवति ।

वर्गत्रयं यदि इच्छथ तति त्रिवर्गं मन्यन् प्रथमम् ॥

त्रिवर्गं निरूपयति -

विराजोवपयप्रमाणा छद्मं मुद् एव लो अप्पा ।

तर्कं पवयणणामा अज्झप्यं होइ हु त्रिवर्गं ॥ १६८ ॥

निक्षेपनयप्रमाणं पद्वन्धुं हुद् एव प आमा ।

तर्कं प्रथमननामा अन्वयाग भवति हि त्रिवर्गं ॥

प्रमाणस्य प्रयोगनमाह -

कार्जं मयलममत्थं जीवो साहेइ वत्थुगहणेण ।

वत्थु प्रमाणमिदं तस्मात्तं जाण विषयेण ॥ १६९ ॥

कार्यं सकलममर्थं जीवः साध्यति वस्तुग्रहणेन ।

वस्तु प्रमाणासिद्धं तस्मात्तज्जातीयं विषयेन ॥

प्रमाणास्य स्वरूपं दर्शयति

गेहणह वन्धुसहावं अविच्छेदं मम्मरुव जं शानं ।

भाणियं सु तं प्रमाणं एत्थवत्तपरोवत्तभेएहि ॥१७०॥

गृह्णानि वस्तुस्वभावं अविस्त्वं सम्पारूपं यज्ज्ञानम् ।
भणितं खलु तन्प्रमाणं प्रत्यक्षपरोक्षभेदाभ्याम् ॥

प्रमाणस्य भेदं कथयति—

मदमुद् परोक्खुणाणं ओहीमण हवइ वियलपभवत्तं ।
केवलणाणं च तहा अणोवमं सयलपच्चक्त्तं ॥ १७१ ?
मतिश्रुती परोक्षज्ञानं अवधिमनो भवति विकलप्रत्यक्षम् ।
केवलज्ञानं च तथा अनुपमं सकलप्रत्यक्षम् ॥

प्रमाणस्य विषयं निरूपयति—

वन्धु पमाणविषयं णयविसयं हवइ वत्पुण्यंसं ।
ज दोहि णिण्णयद्वं तं णिकखेवे हवे विसयं ॥ १७२ ?
वस्तु प्रमाणविषयं नयविषयो भवति वस्तुकांशः ।
यो द्वाभ्यां निर्णेतार्यः स निक्षेपं भवेद्विषयः ॥

नययोजनिकाक्रममाह—

पाणासहायभरियं वत्थुं गहिल्लणं तं पमाणेण ।
एयंतणामणद्वं पच्छा णयजुंजणं कुणह ॥ १७३ ॥
नानाम्बभावभरितं वस्तु गृहीत्वा तन्प्रमाणेन ।
एकान्तनाशनाथं पधान्नययोजनं कुस्त ॥

उक्तञ्च गाथात्रयेणान्यस्मिन्बन्धे

मणियप्प णिच्चियप्पं पमाणस्त्वं जिणेहि णिदिद्वं ।
तद्विद्वं णया वि मणिया सयियप्पा णिच्चियप्पा वि ।
सर्विकत्ता निर्विकत्तां प्रमाणरूपं जिनेर्निर्दिष्टम् ।

नयविषयं नया अति मणिता मदिकत्ता निर्विकत्ता अति

अथ शोकम्

ज्ञानस्यमनुष्यं दम्बं गिदणेर कैवलं जातं ।
तस्य ज्ञेयं वि गिदणेर भूदोऽभूदो य घट्टमाणो वि ॥२॥
काष्ठव्रगनयुतः द्रव्य गृहणानि केवल ज्ञानम् ।
तथा नयेनापि गृह्यते भूतोऽभूतश्च वर्तमानोऽपि ॥

अथ शोकम्—

नगमद्विष सवियर्ष्यं पाणवडकं जिणेहि गिरिडि ।
तन्निवर्तीय इयं आगमचक्रगूहि पायच्च ॥ ३ ॥
मनःसहित सविकल्पं ज्ञानचतुष्क जिनेः निर्दिष्टम् ।
तद्विपरीतमितरत् आगमचक्रुभिर्ज्ञातव्यम् ॥

इति प्रमाणाधिकारः ॥

अथ नयग्रहस्वमाह—

जे पाणीण वियर्ष्यं सुअभेयं पत्तुअंममंगइणं ।
तें इह नयं पडसं पाणी पुण तेहि पाणेहि ॥१७४॥
यो ज्ञानिनो विकल्पः ध्रुतभेदो बन्धनान्नवणम् ।
स इह नयः प्रोक्तो ज्ञानो पुनस्तीर्णनिः ॥

नयप्रयोजन प्रदर्शयति—

जहा पायेण न विणा होइ नरस्स नियवायपडियणी ।
तहा सो पायव्यो एयन्ते हंतुकामेण ॥१७५॥
यस्मान्नयेन न विना भवति नरस्य स्वाहाइप्रतिगति ।
तस्मान्स् हातव्य एकान्त एत्तुपदमेन ॥

एतन्मनसं नार्यं दृष्टान्तमाह—

उद गदाणमाह मम्मगं उद नशादुगुणानिहृण ।
 धात्रो वा एयरमो नह जयमूर्ते अजेयतां ॥१७६॥
 यथा गदानादिः सम्पत्ता यथा तदभादिदुर्गन्धिने
 प्येयो वैकरमस्तथा नदन्तोऽनेकान्त ॥

नैकान्तेन वन्तुग्यभावः स्वार्थश्च निद्रपर्वतान्नाह-
 नच्च विम्मवियप्यं एयवियप्येण माहृण जो हु ।
 तम्म ज मिग्गइ वन्तु किह एयन्तं पमाहेदि ॥१७७॥
 तत्र विश्वविकल्प एकविकल्पेन साप्सोनि दो हि ।
 तस्य न सिष्यति वस्तु कथमेकान्त प्रमाथयति ॥

उक्त चान्याग्निन्मन्थे—

पञ्चवर्गामक चित्र तत्र वर्णकप्राहकम् ।
 क्रमाक्रमस्वरूपेण कथं गृह्णाति मो वद ॥१७८॥
 सर्ववैकान्तरूपेण यदि जानाति वान्तरं ।
 भूरिधर्मात्मिक वस्तु केन निधीयते स्फुटम् ॥

स्वार्थाभिष्टायिणां स्वार्थस्य मार्गमनुमार्गं च दर्शयति-
 ज्ञाणं ज्ञाणन्मासं ज्ञाणस्म तद्देव भावणा भणिया
 मोचूण ज्ञाणभासं चेद्दि पिय संजुओ समणो ॥१७९॥
 ध्यान ध्यानाभ्यासो ध्यानस्य तथैव भावना भणिता ।
 मुक्त्वा ध्यानाभ्यासं क्षाम्यामपिच संयुतः श्रमणः ॥

ज्ञाणस्स भावणाविय ण हु सो आराहओ हवे पि
 ओ ण विजाणइ वत्तुं पमाणणयणिच्छयं किच्चा

णिच्छयसाहणहेऊं पञ्जयद्वत्थियं मुणह ॥ १८३

निश्चयव्यवहारनयी मूलमेदो नयानां सर्वेणाम् ।

निश्चयसाधनहेन् पर्यायिद्रव्यार्थिकौ मन्यन्तम् ॥

दो चैवय मूलणया भणिया दव्वत्थिय पञ्जयत्थियणा

अण्णे असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥ १८४ ॥

दो चैव मूलनयी भणितौ द्रव्यार्थपर्ययार्थगतौ ।

अन्येऽसंख्यसंख्यास्ते तद्भेदा मन्तव्याः ॥

समतयोस्तीतिपनयोश्चाह—

णइगम संगह चवहा र तह य रिउसुत्तसदअभिरुडा ।

एवंभूदो णय णयणेया तह उवणया तिण्णि ॥ १८५ ॥

नैगमः संगमो व्यवहारस्तथाच ऋजुसूत्रशब्दसमभिरुडाः ।

एवंभूतो नव नया ज्ञेयारतपोपनयास्त्रयः ॥

द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनैगमादिसप्तनयानां च यथासम्भवं

भेदानाह—

दव्वत्थो दहमेयं छम्मेयं पञ्जयत्थियं णेयं ।

तिथिहं च णइगमं तह दुथिहं पुण संगहं सत्थ ॥ १८६

ववहारं रिउमुणं दुथियप्पं सेगमाद्दु एकेका ।

उत्ता इह णयमेया उवणयमेया वि वमणामो ॥ १८७ ॥

द्रव्यार्थिको दशमेदः पद्मेदः पर्यायार्थिको तेषः ।

त्रिविधश्च नैगममन्या द्विविधः पुनः संवहण

व्यवहारमुंश्री द्विविधस्त्वैवैव द्वि

दन्त इह नवमेदा



निच्छयसाहणहेतुं पञ्जयद्वितियं मुणह ॥ १८३ ॥
 निश्चयव्यवहारनयी मूलभेदौ नयानौ सर्वेषाम् ।
 निश्चयसाधनहेतुं पर्यायद्रव्यार्थिकौ मन्यन्तम् ॥
 दो चैवय मूलणया भणिया द्ब्वत्थि पञ्जयत्थिगया ।
 अण्णे असंखसंखा ते तन्मेया मुणोयच्चा ॥ १८४ ॥
 दो चैव मूलनयी भणितौ द्रव्यार्थपर्ययार्थगतौ ।
 अन्येऽसह्यसंख्यास्ते तद्भेदा मन्तव्याः ॥

समनयोस्त्रीनुपनयोश्चाह—

णइगम संगह यवहा र तह य रिउसुत्तमइअभिरुदा ।
 एवंभूदो णय णयणेया मह उवणया तिण्णि ॥ १८५ ॥
 नैगमः समहो व्यवहारस्तथाच ऋजुसूत्रशब्दसमभिरुदाः ।
 एवंभूतो नय नया ज्ञेयास्तपोपनयाग्रयः ॥

द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनैगमादिसमनयानां च यथास्तम्भं
 भेदानाह—

द्ब्वन्थो दहेमये छम्मेये पञ्जयत्थिये मेये ।
 तिविहं च णइगमे मह दुविहं पुण मेगहं तत्थ ॥ १८६ ॥
 यवहारे रिउसुत्तं द्ब्वियत्थे मेगमाहृ एकेहा ।
 उत्ता इह णयमेया उवणयमेया वि पमणामा ॥ १८७ ॥
 द्रव्यार्थिको दशभेदः च्छम्भेदः पर्यायार्थिको मेय ।
 त्रिविध नैगमभ्यां द्विविध पुन संसहापन ॥
 व्यवहारसुगुणी द्विविधशक्तौ हेता दि पक्के ।
 हता इह नयमेया उवणयमेयान्ति प्रभयाः ॥

कमेणा भप्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशं ।
भप्यते स शुद्धनयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥

सत्ताम्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लभयति-

उष्पादवयं गउणं किञ्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो मुद्धणओ इह सत्तागाहिओ समये ॥१९२॥
उरगदन्वयै गाणी कृत्वा यो गृह्णाति केवलां सत्ताम् ।
भप्यते स शुद्धनयः इह सत्ताम्राहकः समये ॥

भेदधिकल्गनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लभयति-

गुणगुणिआइउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं ।
मुद्धो सो दब्बन्धो भेयवियप्पेण निरवेक्खो ॥१९३॥
गुणगुणादिचतुष्केथे यो न करोति खलु भेदं ।
शुद्धं स द्रव्यार्थिकः भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥

कर्मोपाधिमापिश्रमशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लभयति-

भावे मरायमादीं सव्वं जीवम्मि जो दु जंपोदि ।
गो दू अमुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसायेवखो ॥१९४॥
भायान्नागादीन्मर्षाञ्जीवे यस्तु जस्पति ।

स हि अशुद्ध उक्तः कर्मणामुपाधिसापेक्षः ॥

उष्पादवयंयमापेक्षाः शुद्धद्रव्यार्थिकनयं लभयति--

उष्पादवयविमिस्सा मत्ता गहिउण भणइ तिदयत्तं ।
दब्बम्म ण्यममये जो गो दु अमुद्धओ पीओ ॥१९५॥
उरगदन्वयविमिस्सा सत्ता गृहीत्वा भणति तिदयत्तम् ।
द्रव्यार्थिकनयं यः सति अशुद्धो द्वितीयः ॥

भेदकल्पनामापेभ्रादुद्वयार्थिकनयं लभयति--

भेए सुदि सम्बन्धं गुणगुणियादिहि कुणदि जो द्रव्ये ।
सो वि असुदो दिहो सहिओ मो भेदकल्पेण ॥१९६॥
भेदे मति सम्बन्धं गुणगुण्यादिभिः करोति यो द्रव्ये ।
सौम्यशुद्धो ह्यः महिनः स भेदकल्पनया ॥

अन्वयद्रव्यार्थिकनयं लभयति--

निस्समहावाणं अण्णयरूपेण मध्वद्वेहि ।
विवहावणाहि जो सो अण्णयद्रव्यन्धिओ भणिदो ॥१९७॥
निशेषरवभावाना अन्वयकल्पेण सर्वद्रव्ये ।
विभाषनाभिः यः सोऽन्नपद्रव्यार्थिको भणितः ॥

मद्वय्यादिमाहकपरद्रव्यादिमाहकद्रव्यार्थिकनयो लभयति--

मद्वय्यादिचउके मंतं दय्यं सु गिदण्ण जो ह ।
णियदब्बादिमु गाही मो इयरो होइ विररीओ
॥१९८॥

मद्वय्यादिचगुणं मद्वय्यं मद्रु गृह्णानि यो हि ।
निजद्रव्यादिषु माही स इतरो भवति विररीण ॥ *

परमभावमाहिद्रव्यार्थिकनयं लभयति -

गेह्णाइ दय्यमहावं असुदुगुद्धोवयास्पगिचत्तं ।
सो परमभावमाही पापय्यां गिद्विकामेण ॥१९९॥
गृह्णानि दय्यस्यभाव अशुदुगुद्धोवयास्पगिचत्तं ।
स परमभावमाही इतत्तय गिद्विकामेण ॥

सम्प्रति पर्यायार्थिकस्य पद्मेदान् विवृणोति तत्र तावदनादिनि-
स्यपर्यायार्थिकं लक्षयति—

अविकट्टिमा अणिहणा ससिसुरार्हण पज्जया माही ।
जो सो अणाइणिहणो जिणमणिओ पज्जयत्थिणओ
॥२००॥

अहृत्त्रिमाननिधनान् शशिसूरादीनां पर्ययान् माही ।
यः सोऽनादिनिधनो जिनमणितः पर्ययार्थिकः ॥

सादिनित्यपर्यायार्थिकं लक्षयति—

कम्मसुयादुप्पण्णो अविणासी जो हु कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ ॥२०१॥
कम्मसुयादुत्पन्नोऽविनासी यो हि कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरन् भण्यते स सादिनित्यनयः ॥

अनित्यसुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति—

सत्ता अमुवसरुवे उप्पादवय हि गिहणए जो हु ।
सो हु सहाअणिच्चोगाही सुलु सुद्धपज्जाओ ॥२०२॥
मणाऽमुस्यरुवे उप्पादस्यसो हि गृणाति यो हि ।
महि स्वभावानियो माही सलु सुद्धपर्यायम् ॥

अनित्यासुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति—

जो गहर एवकममये उप्पादव्ययधुवरासंतुत्तं ।
सो सन्मायअणिच्चो अगुद्धओ पज्जयत्थिणओ
॥२०३॥

ये गृशात्पेकसमये उप्पादस्ययधुववसंतुत्तम् ।

म मङ्गलाऽनित्योऽशुद्धः पर्यायार्धिकनयः ॥

हर्मोपाधिनिरपेक्षानित्यशुद्धपर्यायार्धिकनयं लक्ष्यति
देहाजं पञ्जाया मुद्धा मिद्धाण भणइ सारित्था ।
ओ सो अपिच्चमुद्धो पञ्जयगाही हवे म णओ ॥२०४
देदिना पर्यायान शुद्धान् मिद्धानां भयति महान् ।
पः सोऽनित्यशुद्ध पर्यदप्राही भवेम नय ॥

हर्मोपाधिनापेक्षानित्यशुद्धपर्यायार्धिकनयं लक्ष्यति—
मणइ अपिच्चामुद्धा चउगइत्रीशान पञ्जया जो इ ।
होइ विमापअपिच्चो अमुद्धओ पञ्जयन्धिणओ ॥२०५
मणव्यनित्याशुद्धो धनुर्मतित्रीशानां पर्यायान्यो हि ।
भयति विभाधानित्योऽशुद्धः पर्यायार्धिकनयः ।

सामान्येनोक्तासौगमनयत्रिभेदादक्षणपुरस्कारमुदाहरति
एत्र नावद्वतनंगमनयमाह -

निष्पत्तअन्धकिमिया बहणकालं तु लं मनायजं ।
नें भूटणरगमणयं अट्टज दिणे निष्पुं धोरं ॥२०६॥
निर्मुक्तार्थक्रियायां वर्तमानकाले तु यस्मात्पणम् ।
स भूतनैगमनयो यथाप दिने निर्मुक्तिदरे ॥

आधिकनयनपञ्चराट्ठमति—

निष्पत्तमिदं पञ्चपदि भारिपदार्थं एगं अनिष्पत्तं ।
अपराधे अह पार्थं यस्मात् सो भागित्तरत्तमणि एगो
॥२०७॥

निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्यं नरोऽनिश्चयम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थो भण्यते स भाविनैगम इति नयः ॥

वर्तमाननैगमनयमुदाहरति—

पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो मिदुधा
लोएमु पुच्छमाणो भण्णइ तं वट्टमाणणयं ॥२०८॥
प्रारब्धां यां क्रियां पचनविधानादि कथयति यः मिदा ।
लोकेषु पृच्छ्यमानो भण्यते स वर्तमाननयः ॥

संग्रहनयं लक्षयित्वा भेदौ सूचयति—

अपरोपरमविरोधे मयं अत्यन्ति मुद्गमंगहणे ।
दोह तमेव अमुद्धं इगिजाइयिमेमगहणेण ॥२०९॥
अपर परमविरोधे सन्नमस्तीति मुद्गममहणे ।
भवति स एवाशुद्धः एकजातिविनाशप्रहणेन ॥

व्यवहारनयं लक्षयित्वा भेदौ सूचयति—

जो मंगहणे गहियं भेयइ अन्यं अमुद्ध मुद्धं वा ॥
सो वरहारो दूरेदो अमुद्धमुद्धत्यभेदकरो ॥२१०॥
य नपदेण गृहीत भिननि अर्धमशुद्ध शुद्ध वा ।

स व्यवहारो विविधोऽशुद्धशुद्धार्थभेदकरः ॥

सुगुणनयं लक्षयित्वा भेदौ संगुण्य प्रथमभेदमुदाहरति—

जो एवममयवही गेरणइ द्ये पुवरापउत्ताओ ।
सो रिउमृणो सुगुणो मयं गहं जहा गणियं ॥ २११ ॥
य एकमवदति तं सुगुणं इत्ये प्रथमभेदः ।
स सुगुणः सुव सः सम्यक् यथा धृतिः ॥

द्वितीयभेदमुदाहरति -

मणुवाइयपञ्चाओ मणुमोचि मगद्विदीमु वटंते ।
ओ मणइ तावकालं सो धूलो होइ गिडमुचो ॥२१२॥
मनुवाइयपर्याय मनुष्य इति स्वकर्मिर्धानेषु वर्तमान ।
यो भजति तावकालं स स्थूलो भवति ऋजुमूत्र ॥

शब्दनय लक्षयति गाभाद्वयन -

ओ षट्पं ण मणइ एयन्धे भिष्णात्तिगअहिंणं ।
मो सरणओ भणिओ णेओ पुंमाइआण जहा ॥२१३॥
अइवा मिदं मदे कीरइ जं कीपि अन्धववहरणं ।
मो सट्ठ मदे विसओ देवोमरेण जह देवो ॥ २१४ ॥
यो वर्तन न मन्यते एकार्थे भिन्नविद्वादीनाम् ।
स शब्दनयो भजित देव पुसादिकानां यथा ।
अपरा मिदं शब्दे शिवते पर्यायमपि अर्थभेदहरणम् ।
स सद्यु शब्दे शिवय देवशब्देन यथा देव ॥

सामभिरुदनय लक्षयति -

मदारुदो अन्धो अन्धारुदो तदंइ पुण मरो ।
भणइ इह सामभिरुदो जह इंद पुंन्दरो मयो ॥२१५॥
अन्धारुदोऽर्धोऽर्धरुदोऽर्धेण पुन शब्द ।
मणुवाइ सामभिरुदो वदेइ पुण्डर एव ॥

एवंभूतनवं लक्षयति -

अं अं कोइ कम्मं देही मणवदमकावपेहादो ।
तं तं तु वापडुणो एवेइदो एवे न लओ ॥२१६॥

पराकरोति कर्म देही मन्त्रप्रबन्धनकार्यवशातः ।

नसन् सद्यु नामयुत संभूतो भवेत्त नय ॥

गतपु नैगमादिषु नयेषु इध्यार्थिक पर्यायार्थिकं अर्थप्रधानं
शब्दप्रधानं वा विभजते

पठमनिया द्बन्व्या पञ्जयगाही य इपर जे भणिया ।

ने चहु अन्यपहाणा महपहाणा हु तिग्गियरा ॥२१७॥

प्रभन्त्रिका इध्यार्थिकाः पर्यायमाहिणश्चेतरे ये भणित्ताः ।

ने चन्वागेर्थप्रधाना शब्दप्रधाना हि त्रय इतरं ॥

पणवण भाविभूदे अत्थे इच्छदि य वट्टणं जो सो ।

मन्वेसिं च णयाणं उवरिं गलु संपलोइज्जा ॥२१८॥

प्रज्ञापन भाविभूतेर्ये इच्छति च वर्तनं यः सः ।

सर्वेषां च नयानामुपरि खलु सम्प्रडोक्यः ॥

एतत्सर्वमन्तमावपात-

पणवण भाविभूदे अत्थे जो सो हु भेदपञ्जाओ ।

अह तं एवंभूदो समयदो मुणह अत्थेसु २१९॥

प्रज्ञापनं भाविभूतेर्ये यः स हि भेदपर्यायः ।

स एवम्भूतः संभवतो मन्यच्चमर्थेषु ॥

कारकसम्भावदो य द्ब्वेसु ।

भयं कुणयं सन्भूयसुद्धियरो ॥२२०॥

णपर्यायद्रव्ये कारकसद्भावतश्च द्ब्वेषु ।

ज्ञात्वा भेदं कियते सद्भूतशुद्धिकरः ॥

इत्थानं सु पएसा बहुगा ववहारदो य एकेण ।



द्वये गुणपञ्जाया गुण द्विव्यापञ्जया षंया ॥२२४॥

द्रव्यगुणपर्यायाणां उपचारस्तेषां भवति तत्रैव ।

द्रव्ये गुणपर्याया गुणे द्रव्यपर्याया ज्ञेयाः ॥

पञ्जाए द्रव्यगुणा उच्येरियं वा हु बंधसंयुक्ता ।

संबंधो संसिलसो णाणीणं णाणणेयमादीहि ॥२२५॥

पर्याये द्रव्यगुणा उपचरितनिव हि बंधसंयुक्ताः ।

संबंध सत्त्व. ज्ञानिना ज्ञानज्ञेयादिभिः ॥

स्वजातिपर्याये स्वजातिपर्यायारोपणोऽसद्भवव्यवहारः

दृष्ट्वा पडिविंबं भवति हु तं चैव एस पञ्जाओ ।

सञ्जाद अनञ्भूओ उच्येरिओ णिययजाइपञ्जाओ ॥२२६॥

दृष्ट्वा प्रनिदिंबं भवति हि स चैवैव पर्यायः ।

स्वजात्यसद्भूतोपचरितो निजजातिपर्यायः ॥

विजानिगुणे विजातिगुणारोपणोऽसद्भवव्यवहारः

सुत्तं इह महणाणं मुत्तिमद्व्येण जण्णिओ जल्ला ।

इह णद्द मुत्तं णाणं तो किं खल्लिओ हु मुत्तेण ॥२२७॥

मूर्तिमिह मतिज्ञानं मूर्तिमद्द्रव्येण जनित यस्मात् ।

एदि नहि मूर्ते ज्ञानं तर्हि किं सञ्चितं मूर्तेन ॥

स्वजातिविजानिद्रव्ये स्वजातिविजातिगुणारोपणं असद्भव-

व्यवहारः-

कयं जीवमर्जावं तं पिय णाणं सु तस्स विसयादो ।

जां मणद्द एरिसत्थं सो वरहारो असम्भूदो ॥२२६॥

उच्यारो पञ्जाए पुगलद्वयस्त भणइ व्यवहारो ॥२३०॥
दृष्टा स्थूलसंकेधं पुत्रलद्वयमिति जल्पते लोके ।

उपचारः पर्याये पुत्रलद्वयस्य भणति व्यवहारः ॥

स्वजातिपर्याये स्वजातिगुणारोपणोसङ्कृतव्यवहारः-

दद्वेष देहठाणं वर्णतो होइ उत्तमं रूपं ।

गुणउच्यारो मणिओ पञ्जाए णत्थि संदेहो ॥२३१॥

दृष्टा देहस्थानं वर्ण्यमानं भवत्युत्तमं रूपम् ।

गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति संदेहः ॥

सम्बन्धे पञ्जयादो संतो मणिओ जिणेहि व्यवहारो ।

जस्त य इवेइ संतो हेऊ दोदणपि तस्त कुदो ॥२३२॥

सर्वत्र पर्यायतोऽस्ति भणितो जिनैर्व्यवहारः ।

यस्य न भवेत्सत्त्वं हेतुर्द्वयोरापि तस्य कुतः ॥

अउगइ इह संसारो तस्म य हेऊ सुहागुहं कम्मं ।

जइ तद्दि मिच्छा किह सो संसारो संखमिव तस्ममए

॥२३३॥

अनुगंतिरिह संसारमन्ये च हेतुः शुभाशुभं कर्तुं ।

यदि तथा भिन्ना कथं न संसारः साध्य इव तस्ममए ॥

एरंदिपादिदेहा जीवा व्यवहारदो य जिणदिहा ।

हिमादिमु जइ पार्यं मप्यन्धवि किं न व्यवहारो ॥२३४॥

एरंदिपादिदेहा जीवा व्यवहारतश्च विनाशः ।

कथं निश्चितिर्ज्ञानं अन्येषां भवति नियमेन ॥

असद्भूतव्यवहारः—

उवयारा उवयारं सच्चासच्चेसु उद्वयअत्थेसुं ।

सज्जाइइयरीमिस्से उवयरीओ कुणइ ववहारो ॥२४०॥

उपचाराहुपचारं मत्थासन्धेपूभायार्थेषु ।

सजातीतरमिश्रेषु उपचरितः करेति व्यवहारः ॥

देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जपतो ।

मे देसं मे दब्ब सच्चासच्चपि उमयत्थ ॥२४१॥

देशपतिः देशस्थः अर्थपतिर्यः तथैव जल्पन् ।

मम देशो मम द्रव्य सत्थासन्धमपि उभयार्थम् ॥

पुचाइवंधुवग्गं अहं च मम संपदादि जप्पंतो ।

उवयारासब्भूओ सजाइदब्बेसु णायव्वो ॥ २४२ ॥

पुत्रादिवधुवग्गोह च मम सम्पदादि जल्पन् ।

उपचारासद्भूतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥

आहरणहेमरयणावच्छादीया ममेति जप्पंतो ।

उवयारियअसब्भूओ विजाइदब्बेसु णायव्वो ॥२४३॥

आभरणहेमरत्नवह्नादि ममेति जल्पन् ।

उपचरितासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥

देसत्थरज्जदुग्गं मिस्सं अण्णं च भणइ मम दब्बं ।

उद्वयत्थे उवयरीदो होइ असब्भूयववहारो ॥ २४४ ॥

देशार्थराज्यदुर्गाणि मिश्रमन्येषु भवति मम द्रव्यम् ।

उभयार्थे उपचरितो भवति असद्भूतव्यवहारः ॥

स्वभावानो यथा मन्दागमिष्याम्पं सापेक्षता च तथाह-
मियसावेकत्वा सम्मा मिच्छारूपा इ तदि मिश्वेकता ।
नञ्चा सियसदादो विसयं दोह्णंपि नायन्वं ॥२४९॥

स्वात्मापेक्षाः सम्यग्ः मिष्यारूपा हि तैः निरपेक्षाः ।

तस्मान्स्वाच्छब्दादिययो इयोरपि ज्ञातव्यः ॥

अवरोप्परसावेकत्वं नयविसयं अह यमाणविसयं वा ।

तं सावेकत्वं तत्तं निरश्वेकत्वं ताण विवरीयं ॥ २५० ॥

अपरापरमापेक्षो नयविययोथ प्रमाणविययो वा ।

तत्मापेक्ष तच्च निरपेक्षं तयोर्विपरीतन् ॥

स्याद्वाइलाञ्छनस्य स्वरूपं निरूपयति-

णियमणितेहणसीलो णिषादणादो य जोहु खलु तिद्धो ।

सो सियसदो भणियो जो सावेकत्वं पसादोदि ॥ २५१ ॥

निदमनियेधनशीलो निशातनाश्च यः खलु तिद्धः ।

स स्वाच्छब्दो भणितः यः सापेक्षं प्रसाधयति ॥

उक्तं चान्मस्मिन्नन्धे,

नित्तञ्चिकोऽयं स्वाच्छब्दो युक्तोऽनेकान्तसाधकः ।

शातनात्समुद्गतो विरोधध्वंसको मतः ॥ १ ॥

। यत्तस्मि दिव्यध्वनिसमुद्भवः ।

अत एव क्षिसंज्ञायं सर्वज्ञैः परिभाषितः ॥ २ ॥

सिद्धमंत्रो यथा लोके एकोऽनेकार्थदायकः ।

स्वाच्छब्दोऽपि तथा ज्ञेय एकोनेकार्थसाधकः ॥ ३ ॥

तद मिय णयणिवहो ज्ञानु दव्ये दुणयमंगी
॥ २५६ ॥

अप्पीणि नासुगुणयमकव्यं तथैव पुनस्त्रितयम् ।
मगगया नयनिरपेक्षं जानातु इत्येषु दुर्णयमंगी ॥

यान्तमङ्गीविषयणायां श्रेयं भद्ररथनोपायं धर्मधर्मिनोः रूपं
बोद्धव्यानेत्यर्थं चाह—

एकणिरुद्धे इपरो पडिवग्गो अणवरेद्द मग्गावो ।
सव्वेमिं च महावे कायव्या होइ तद्द मंगी ॥ २५७ ॥
एकणिरुद्धे इतरं प्राणियधोऽनुवर्तने स्वभावः ।
मग्गेण च स्वभावे कत्तव्या मग्गेत्तया भक्ती ॥

धम्मी धम्मसहायो धम्मा पुण एकएकनग्गिहा ।
अवरोप्परं विमिण्णा णायव्या गउणमुत्तमावेणा २५८
धर्मा धर्मस्वभावः धर्माः पुनरंकेकतान्निष्टाः ।
अपरापरं विभिन्नाः ज्ञातव्या गौणमुत्तमावेन ॥

सापेक्षतासाधकमन्वन्धं युक्तिस्वरूपं चाह—

मियजुत्तो णयणिवहो दव्वसहावं मणेइ इह तत्थं ।
मुणयपमाणा जुत्ती णहु जुत्तिविवज्जियं तत्थं ॥२५९॥
स्यायुक्तो जयनिवहो दव्यस्वभावो मणति इह तत्थम् ।
मुनयप्रमाणा युक्तिर्नहि युक्तिविवर्जितं तत्त्वम् ॥

तत्त्वस्य हेयोपादेयत्वमाह—

तत्त्वं पि हेयमियरं हेयं खलु मणिय ताण परदव्वं ।

इयरा इयरा भगिना टवणा अग्निहो य नावम्बोर
साकारेतरा स्यापना कृत्रिनेतरा हि विमजा प्रथ्ण ।
इतरा इतरा भगिता स्यापनाऽर्हंश्च ज्ञातव्यः ॥

द्रव्यनिशेषस्य भेदप्रभेदान्मोदाहरणं निरूपयति—
द्वयं सु होइ द्विविहं आगमणोआगमेण जइ भाविं ।
अरहंतसत्यजाणो अणजुत्तो दव्व-अरिहंतो ॥२७
द्रव्यं खलु भवति द्विविधं आगमनोआगमान्यां यदा न्ने
अर्हंश्चास्त्रज्ञायकोऽन्ययुक्तो द्रव्यार्हन् ॥
णोआगमं पि तिविहं देहं णाणिस्स भावि कम्मं च
णाणिसरीरं तिविहं चुद चरां चाविदं चेति ॥२७५।
नोआगमोऽपि त्रिविधः देहो ज्ञानिनो भावि कर्म च ।
ज्ञानिशरीरं त्रिविधं प्युतं त्यक्त व्यावितं चेति ॥

भावनिशेषभेदमुदाहरति—

आगमणोआगमदो तहेव भावो वि होइ दव्वं वा ।
अरहंतसत्यजाणो आगमभावो हु अरहंतो ॥२७६॥
आगमनोआगमतस्तथैव भावोऽपि भवति द्रव्यमिव ।
अर्हंश्चास्त्रज्ञायकः आगमभावो हि अर्हन् ॥
तग्गुणए य परिणदो णोआगमभाव होइ अरहंतो ।
तग्गुणएई ज्ञादा केवलणाणी हु परिणदो भणित्तो ॥२७
तद्गुणेश्च परिणतो नोआगमभावो भवत्यर्हन् ।
तद्गुणैर्घ्याता केवलज्ञानी हि परिणतो भणितः ॥

इह गुणपञ्चपरवर्तं दन्वं भणियं खु अण्णसूरीहिं ।
भातं विदुषं तस्स य तेहिं पिय एरिस्स भणियं ॥२७८॥

इह गुणनर्पवद् दन्वं भणितं खलु अन्यसूरीभिः ।

एव इयं तस्य च तैरपि चेदस्य भणितम् ॥

यो इहं भणियन्वं भिण्णं काऊण एसु णिवहेवं ।

इत्थेव दंमणहं भणियं काऊणमिह मुत्तं ॥२७९॥

यो इहं भणितव्यं मित्रं कृत्वा एषु निक्षेपम् ।

तस्मैव दर्शनार्थं भणितं कृत्वेह सूत्रम् ॥

निक्षेपाश्रये एवान्तर्भावयति

सरेणुं जाण णामं तदेव ठवणा हु धूलग्गिउत्तुत्तं ।

एवं पिय उवयारे भाव पञ्जायमउत्तगरं ॥२८०॥

सरेणुं जानीहि नाम तथैव स्थापना हि स्थूलभूतम् ।

दन्वपि चोपधारे भाव दर्शयमप्यगतम् ॥

निक्षेपादिज्ञानस्य प्रयोजनमाश्रये -

पिण्णेषुं पय पमाणं पादुणं भावयति जे तस्से ।

ये तत्पत्तुत्तमग्गे लहंति लग्गा हु तत्थयं तात्थं ॥२८१॥

निक्षेपेनैव प्रमाणं हात्वा भावयन्ति ये तस्वम् ॥

ये तत्पत्तुत्तमग्गे लहंति लग्गा हु तत्थयं तात्थं ॥

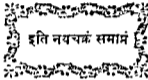
गुणपञ्चयाणं सुवगस्य सदाय निपत्तेणं एव पमाणं वा
शाणदिं यदि भणियन्वं दन्वमहाव खु बुद्धेदि ॥२८२॥

गुणदर्शनात्तां लभ्यते स्वभावनिक्षेपेनैव प्रमाणं वा ।

जायते यदि सन्निवृत्तं दन्वमहाव खु बुद्धेदि ॥

इति निक्षेपश्च ॥

दुःस्वीरणेन पीतप्रेरितं सन् यथा तीरं नष्टम् ।
श्रीदेवमेनमुनिना तथा नयचक्रं पुनारचितम् ॥



ॐ

श्रीमद्देवसेनविरचिता
आलापपद्धतिः ।

(७)

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।
पर्यायानां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥ १ ॥

आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते
ष किमर्थम् ? द्रव्यलक्षणसिद्ध्यर्थं स्वभावसिद्ध्यर्थम् । द
कानि ? जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि । सद् द्रव्यलक्ष
रत्वाद्व्यपधीभ्ययुक्तं सत् । इति द्रव्याधिकारः ।

लक्षणानि कानि ? अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमे
यगुणलक्षुत्वं (१), प्रदेशत्व (२), चेतनत्वमचेतनत्व, मूर्त्तत्व
द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः । प्रदेकमष्टावष्टौ सर्वेष्टम् ।

[एकेकद्रव्ये अष्टौ भेदाः गुणा भवन्ति । जीवद्रव्ये मचेतनत्व
त्वं च नास्ति, पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्त्तत्वं च नास्ति, धर्माधा
रकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्त्तत्वं च नास्ति । एवं द्विद्रिगुण
अष्टौ भेदाः गुणाः प्र देकद्रव्ये भवन्ति {३} ।]

ज्ञानदर्शनगुणवीर्याणि सार्धैरसगधर्माः मदीहेतुत्वं स्थितिः

१ एतन्ना अज्ञानोत्पत्त प्रतीक्ष्य च र्विज्ञाना अज्ञानद्वयसम्बन्धः
भगुणत्वगुणाः । २ क्षेत्रत्वं अधिभाषि पुद्गलपरमाणुनाप्यर्थम् ।
सत्पुण्यैर्प्रविशपाठः ।

वः(१), मूर्त्तस्वभावः [२], अमूर्त्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावाः (३) । जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः—चेतनस्वभावः, मूर्त्तस्वभावः, विभावस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, एतैः पञ्चभिः स्वभावैर्विना धर्मादिद्रव्याणां षोडश स्वभावाः सन्ति । तत्र बहुप्रदेश विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः (४) ।

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः ।

धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥३॥

ते कुतो ज्ञेयाः ? प्रमाणनयविवक्षातः । सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् । तद् द्वेषा प्रत्यक्षेतरभेदात् । अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ । केषुं सकलप्रत्यक्षे । मतिश्रुते परोक्षे । प्रमाणमुक्तं । तदययवा नशाः ।

नयभेदा उपयन्ते,—

णिच्छयवचहारणया (५) मूलमभेयाण ताण सव्याणं ।

णिच्छयसाहणहेओ दव्वयपज्जत्थिगा सुणइ ॥४॥

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, सङ्ग्रहः, व्यवहारः, श्रुतिः

१ जीवस्याप्यमूर्त्तत्वव्यवहारेणाचेतनस्वभावः । २ जीवस्याप्यमूर्त्तत्वव्यवहारेण मूर्त्तस्वभावः ।

३ “ तत्कालपर्ययात्तान्तं यानु भावोभिपीयते ” ॥ ४ एतत् एकप्रदेशभावात् अत एव बहुप्रदेशस्वभावाभावेऽपि संचरतः । न भवति किंतु तत्र उपचरितस्वभावापि निश्चित्यते तदपेक्षया संचरतः इति । ५ निश्चयनया द्रव्यार्थता व्यवहारनयाः पर्यायार्थताः ।

प्रथ पर्यायार्थिकस्य पद् भेदा उच्यन्ते,—

अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा— पुत्रलरर्पायो नित्यो मेरो
सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा—सिद्धपर्यायो नित्यः । सत्तागीण
नोत्पादव्ययमाहकस्वभावो नित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—स
समयं प्रति पर्याया विनाशिनः । सत्तासापेशस्वभावो नि
शुद्धपर्यायार्थिको यथा—एकस्मिन् समये श्रयान्कः (१)
र्यायः । कर्मोपाधिनिरपेशस्वभावो नित्यशुद्धपर्यायार्थिको २
सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः । कर्मोपाधिमा
हस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—संसारिणामुत्पत्तिक
रतः । इति पर्यायार्थिकस्य पद् भेदाः ।

नेगमश्रेया भूतभाविवर्तमानकालभेदात् । अतीते वर्तमाना
पण यत्र स भूतनेगमो यथा—अद्य दीपोऽसवदिन श्रीवर्तमा
स्वामी मोक्षं गतः । भाविनि मृतवत्कदन यत्र स भावि
गमो यथा—अहंन् सिद्ध एव । कर्तुमारब्धवीगत्रिष्यसमनिष्पन्नं ।
बभूवु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्तमाननेगमो यथा—ओदनः ५
प्यते । इति नेगमश्रेया ।

संप्रहो द्विविधः । सामान्यसंप्रहो यथा—सर्वाणि द्रव्याणि १
रक्षरमयितोषीनि । विशेषसंप्रहो यथा—सर्वे जीवाः परस्परद्वि-
गोचिनः । इति संप्रहोऽपि द्विधा ।

अवधारोऽपि द्विधा । सामान्यसंप्रहोभेदको अवधारो यथा—

१ पूर्वज्ञानविनाय उत्तरपर्यायस्योपादानो, इत्यनेन प्रथमः ।

यथा—देशराज्यदुर्गादि मम । इत्युपचरितामद्भूतव्यवहारश्रेयां ।

सहमावा गुणाः (१), क्रमवर्तिनः पर्यायाः । गुण्यते पृथक्
यते द्रव्यं द्रव्यान्तराद्येस्ते गुणाः । अस्तीत्येतस्य भावोस्तिवत् सदृ-
त्यम् । वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, नामान्यविशेषात्मक वस्तु । इत्य-
स्वभावो द्रव्यत्वम् । निजनिजप्रदेशमद्देशत्वण्डदृष्ट्या स्वभावविभा-
पर्यायान् द्रवति (२) द्रोष्यति अद्द्रवति इति द्रव्यम् । सदृश्यत्व-
णम् । सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्तो िति सत् । उक्तद-
यत्प्रेष्ययुक्त सत् । प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम् । प्रमाणेन स्वरस्वर-
परि(३)च्छेप प्रमेयम् । अगुरुद्वयोर्भावोऽगुरुद्वयत्वम् । सूत्रकः पागमे-
चराः प्रतिश्रुतं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुद्वयत्वम् ।

“ सूक्ष्मं त्रिनोर्दत्तं तच्च हेतुभिर्नय हन्यते ।

आज्ञामिदं तु तद् ग्राह्यं नान्यथादिनो त्रिनाः” ॥५॥

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वक्षेत्र्य अविनाशिपुत्र इत्यम गुणाः (४)
(४) । चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् (५) चेतन्यमनुभूतत्वम् ।

चेतन्यमनुभूतिः स्यात् मा क्रियास्वरूपेण च ।

क्रिया मनोवचःकापेक्ष्यनिता वर्तते ध्रुवम् ॥६॥

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचेतन्यमनुभूतत्वम् । सूत्रकः (६)
सूत्रकं (६) स्थादिमत्वम् । अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वमन्नादिदिगत्व-
इति गुणनां भुवति । स्वभावविभाज्यत्वनया यानि वर्तन्ति इति

१ अन्वयः । २ अन्वयः । ३ साऽप्येवम् । ४ स्यात् । ५ अन्वयः
निर्दिष्टाऽप्येवम् । ६ अन्वयः । ७ अन्वयः । ८ अन्वयः । ९ अन्वयः । १० अन्वयः ।

“ दुर्णयैकांतमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते ।

स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः सकलंका नया यतः ” ॥८॥

तत्कथं ? तथाहि—सर्वथैकातेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था

(१) संकरादिदोषत्वात्, तथा सद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात्. नि-
त्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः. अर्थक्रियाकारित्वा-
भावे द्रव्यस्याप्यभावः । अनित्यपक्षेपि अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाका-
रित्वाभावः (२), अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । एकस्व-
रूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः. सर्वथैकरूपत्वात्, विशेषाभावे सामान्य-
स्याप्यभावः ।

“ निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्स्वरविपाणयत् ।

सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि” ॥९॥ इति श्लेषः ।

अनेकपक्षेपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेयमा-
वाच्च । भेदपक्षेपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वा-
भावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अमेदपक्षेपि
सर्वेषामेकत्वम् । सर्वेषामेकत्वेर्धक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारि-
त्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । मव्यस्यैकतेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य
द्रव्यांतरत्वप्रसंगात् संकरादिदोषसंभवात् । संकरव्यक्तिहरविशो-
धत्रैवधिरुपग्रहानवस्थासंशयाप्रतिपर्यभावाच्चेति । सर्वथाऽमव्य-
स्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वभावस्वरूपस्यैकान्ते संमारा-
भावः । विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः । सर्वथा चैतन्यमेवैयुक्ते

१ यथा तिष्ठो माणवकः (माणवको मार्जारः) २ निरन्यतत्वादिषति
पाठः ॥



वभावः । उरमादव्ययर्णोत्वेन सत्ताप्राहकण इत्यस्वभावः
 केनचिःपर्यायार्थिकेनानिव्यम्बभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभा-
 वः । अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकस्वभावत्वम् । सद्भूतव्यव-
 हारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगु-
 ण्यादिभिरभेदस्वभावः । परमभावप्राहक्येण भव्याभ्यपारिणामिक-
 स्वभावः । शुद्धाशुद्धपरमभावप्राहक्येण [१] चेतनस्वभावो जीवस्य ।
 असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः । परमभावप्रा-
 हक्येण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ॥

जीवस्याऽसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः । परमभावप्राहक्येण
 कर्मनोकर्मणोर्भूतस्वभावः । जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः
 परमभावप्राहक्येण पुद्गलविहाय इतरेषाममूर्तस्वभावः [२] । पुद्गलस्यो-
 पचारादेवास्यमूर्तत्वम् । परमभावप्राहक्येण कालपुद्गलानूनामेक-
 प्रदेशस्वभावत्वम् । भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्मधर्माकाशजीवा-
 नां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वम् । भेदकल्पनाभावेण चतुर्णामपि
 नानाप्रदेशत्वत्वम् । पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वं न च
 कालाणोः निम्नरूपत्वाभावात् । अरूपत्वाच्चाणोरमूर्तकालस्यैक-
 विंशतितमो भावो न स्यात् । परोक्षप्रमाणपेक्षया सद्भूतव्यवहा-
 रेणाशुभचारिणाममूर्तत्वम् । पुद्गलस्य शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावं-
 स्वभावत्वम् (३) । शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धत्वभावः । अशुद्धद्रव्यार्-
 थिकेनाशुद्धत्वभावः । असद्भूतव्यवहारेणोरचरितत्वभावः ॥

१) “द्रव्याणां तु यथारूपं तद्दोकेपि व्ययस्थितम् ।

१) तत्रैव । २) जीवधर्मोपमाकाशराजानाम् ३) जीवपुद्गलयोः

पर्याय पर्यायः प्रयोजनमस्येति सादिनिपर्यायार्थिकः । शुद्ध-
पर्याय पर्यायः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः । अशुद्धपर्याय-
पर्यायः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः ।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।

नैके गच्छन्ति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः । अने-
दरूपतया यन्मुजातं संगृह्णातांति संग्रहः । संग्रहेण गृह्णानार्थ-
स्य नेदरूपतया वस्तु येन व्यवहियत इति व्यवहारः । ऋजु प्राञ्च-
लं सूत्रपतीति ऋजुमूत्र । शब्दात् व्याकरणान् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण
सिद्धः शब्दः शब्दनयः । परस्परैर्णाभिरूडाः समभिरूडाः ।
शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति । यथा शक्र इन्द्रः पुरंदर इत्यादयः
समभिरूडाः । एव क्रियाप्रधानत्वेन (१) भूयत इत्येवमूतः । शुद्ध-
शुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ । अमेदानुपचारतया वस्तु
निश्चियत इति निश्चयः । भेदोपचारतया वस्तु व्यवहियत इति
व्यवहारः । गुणगुणिनोः सञ्जादिभेदात् भेदक. सद्भूतव्यवहार.
अन्यत्र (२) प्रसिद्धस्य धर्मस्या [३] न्यत्र (४) समारोपणमसद्भू-
तव्यवहारः । असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः
करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः । गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः
स्वभावस्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः ।
द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये

१ एवमित्युक्ते कार्यः क्रियाप्रधानत्वेनेति विशेषणम् २ शुद्धशरी ।
३ स्वभावस्य ४ जीवादौ ।

सम्पन्नहागे यथा-जीस्य केवलज्ञानादयो गुणाः । भगद्भूत तत्र
हागे द्विविध उपपत्तिानुपचरितभेदात् । तत्र सम्पन्नद्वितयम्भुम
वर्धितय एतद्विनामद्भूतव्यवहागे यथा देवदत्तस्य धर्मज्ञान
सम्पन्नद्वितयम्भुमं वर्धितयोनुचरितानामद्भूतव्यवहागे यथा-जीस्य
एव (१) सगीरमिति ॥

इति गुणसोपार्थमादात्तद्विधिः श्रीमदेकगेर्जातिविना
परिमयात् ॥



१ ' देवदत्तस्य ' इति च पाठः ।

